INTERNATIONAL MAGAZINE
RNI No. 64884/96

30/-

ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीअै एकु एकु वखाणीअै ।।
आतम पसारा करण हारा प्रभ बिनां नहीं जाणीअै ।।

आत्म मार्ग

July 2018

पंचम् पातशाह जी के शहीदी दिवस के उपलक्ष्य में रतवाड़ा साहिब में आयोजित
गुरमति समागम में कीर्तन का रसास्वादन करते हुए श्रद्धालुजन

आत्म मार्ग

वर्ष तेइसवां - अंक छट्ठा, जुलाई 2018

गुरद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहिब

संचालक

श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी महाराज (ब्रह्मलीन)
तथा संत माता (बीजी) रणजीत कौर जी (ब्रह्मलीन)

चेयरमैन	एडिटर-इन-चीफ
सन्त बाबा लखबीर सिंह जी	सन्त बाबा हरपाल सिंह जी
प्रबन्ध सम्पादक	**मुख्य सम्पादक**
भाई (डा.) सुखविंदर सिंह	डा. जगजीत सिंह (97798 16909)

मासिक पत्रिका न पहुँचने सम्बन्धी पूछताछ

यदि आपको माह की 15 तारीख तक आत्म मार्ग पत्रिका प्राप्त नहीं हो पाती है तो आप कृप्या निम्नलिखित सम्पर्क नम्बरों पर कार्यलय समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 6.00 बजे तक सम्पर्क करने की कृपा करें -

सम्पर्क न. - **84378-12900, 94172-14391, 94172-14379**

Email : atammarg1@yahoo.co.in

Postal Address for any Enquiry, Money Order's :

'ATAM MARG' MAGAJINE
Gurdwara Ishar Parkash, Ratwara Sahib (New Chandigarh) P.O. Mullanpur Garibdas, Teh. Kharar, Distt. S.A.S. Nagar (MOHALI) - 140901, Pb. India

SUBSCRIPTION - शुल्क (देश)

वार्षिक	आजीवन सदस्यता	प्रति कापी
300/-	3000/-	30/-
320/-	3020/- (For outstation cheques)	

SUBSCRIPTION FOREIGN (विदेश)

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 £
Canada	80 Can $	800 Can $
Australia	80 Aus $	800 Aus $

प्रकाशन के समस्त अधिकार सुरक्षित हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक सन्त बाबा हरपाल सिंह जी ने 'आत्म मार्ग' जै आफ सैट प्रिंटर्ज, 905 इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज़-2, चण्डीगढ़ से छपवा कर मुख्य कार्यालय 'आत्म मार्ग' रतवाड़ा साहिब, डाकखाना मुल्लांपुर, तहसील खरड़, एस.ए.एस. नगर (मोहाली), पंजाब से प्रकाशित किया।

Please visit us on internet at :-
For Atam Marg Email : atammarg1@yahoo.co.in,
Website & Live video -

www.ratwarasahib.in
www.ratwarasahib.org } **(Every sunday)**

Email :sratwarasahib.in@gmail.com

विदेशों में आत्म मार्ग की शाखाएँ

अमेरिका - बाबा सतनाम सिंह अटवाल
फोन तथा फैक्स : 001-408-263-1844

कैनेडा - भाई सरमुख सिंह पंनू, वैनकूवर
फोन : 001-604-433-0408

भाई तरसेम सिंह बैंस - मोबाइल 001-604-862-9525
फोन : 001-604-288-5000

भाई जसबीर सिंह राणू - फोन : 001-604-589-9189

इंगलैंड - बीबी गुरबख्श कौर तथा भाई जगतार सिंह जग्गी
फोन:0044-121-200-2818 फैक्स :0044-121-200-2879,

भाई अरविंदर सिंह (राज) मोबाइल:0044-7968734058

आस्ट्रेलिया : बीबी जस्प्रीत कौर: मोबाइल-0061-406619858

रतवाड़ा साहिब की संस्थाओं के सम्पर्क नम्बर

* आत्म मार्ग मैगज़ीन (पंजाबी, हिन्दी तथा अंग्रेजी) **9417214391, 9417214379, 8437812900**
* गुरू गोबिंद सिंह विद्या मन्दिर सीनियर सैकण्डरी स्कूल **(CBSE) - 0160-2255003**
* माता साहिब कौर मुफ्त सिलाई सैंटर - **96461-01996**
* सन्त वरियाम सिंह मैमोरियल पब्लिक सीनियर सैकण्डरी स्कूल **(PSEB)** अंग्रेजी माध्यम - **95920-55581**
* सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल (मुफ्त) **98786-95178, 92176-93845**
* इंटरनैशनल डिवाइन स्कूल आफ़ नर्सिंग - **94172-14382**
* इंटरनैशनल डिवाइन कालेज आफ़ ऐजूकेशन (बी. एड.) **94172-14382**
* अकाल वृद्ध आश्रम (मुफ्त) **98157-28220**

विशेष जानकारी के लिए

श्री मान जी	-	**98551-32009**
श्री आखण्ड पाठ साहिब बुकिंग	-	**94647-12900**
आडियो-वीडियो लाईब्रेरी	-	**98728-14385, 98555-28517**
केवल टी.वी. नेटवर्क	-	**94172-14385**

अन्य सम्पर्क नम्बर

98889-10777, 96461-01996, 9417214381

विषय-सूची

1. सम्पादकीय 5
(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

2. बारहमाहा 6
डा. जगजीत सिंह

3. नानक दुखीआ सभु संसारु।। 10
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

4. जिन सतिगुर की आगिआ ....।। 21
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

5. बाबाणियाँ कहानियाँ 30
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

6. आत्म ज्ञान 34
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

7. सूरा सो पहचानीऐ ....।। 37
सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

8. नूरानी मिलाप 40
(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

9. गुरबाणी अर्थ भण्डार 42
सन्त हरी सिंह जी रन्धावे वाले

10. नौवें रत्न - सन्त ईशर सिंह जी महाराज, राड़ा साहिब 45
ज्ञानी मेहर सिंह जी

11. गुरु नानक आगमन 48
डा. भाई वीर सिंह जी

12. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब सर्वोत्तम 50
डा. स्वामी राम जी

13. गुरू गोबिंद सिंह रचित - जफरनामा 52
सन्त निरंजन सिंह नूर

14. स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार 53
डा. स्वामी राम जी

15. विशेष जानकारी - बैंक खाता, आत्म मार्ग मैगजीन सदस्यता प्रारूप, अस्पताल जानकारी, तथा पुस्तक सूची 55

सम्पादकीय

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

चरन चलउ मारगि गोबिंद ॥
मिटहि पाप जपीऐ हरि बिंद ॥ अंग – 281

परमेश्वर के मार्ग पर चलना ही आत्म मार्ग है। 'आतमा परातमा ऐको करै।। अंतर की दुबिधा अंतरि मरै।।' (अंग – 661) का विलक्षण, अदृश्य व आन्तरिक मार्ग है। इस अत्यन्त सूक्ष्म मार्ग पर केवल आत्मा ही चल सकती है और शरीर तो इस मार्ग पर चलने के लिए केवल एक साधन मात्र ही है। अत्यन्त सूक्ष्म मार्ग पर चलने के लिए अत्यन्त सूक्ष्म विचारधारा की जरूरत पड़ती है और यही मार्ग गुरमति मार्ग है। गुरमति का मार्ग कठिन व सरल अपनी अपनी अवस्था के अनुसार है लेकिन यह वास्तव में अत्यन्त सूक्ष्म है।

हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इक ठाइ॥
अंग – 560

सूक्ष्म से सूक्ष्म मैल जो हमारे अन्दर आ जाती है, वह इस मार्ग में बहुत बड़ी बाधा बन जाती है और कल्युगी जीव (साधक) को इसके बारे में तनिक सा आभास भी नहीं हो पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अज्ञानता के अन्धकार के कारण बिल्कुल पास में ही पड़ी हुई दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु की तरफ से यह अनजान ही रह जाता है। यथा–

धन पिर का इक ही संगि वासा
विचि हउमै भीति करारी ॥
गुरि पूरै हउमै भीति तोरी
जन नानक मिले बनवारी ॥ अंग – 1263

जब समर्थ सतगुरू 'नाम' की कृपा करते हैं तो यह अत्यन्त कठिन मार्ग भी अत्यन्त सरल मार्ग बन जाता है। जन्म जन्मान्तरों के पड़े हुए अज्ञानता के अन्धकार को समर्थ सतगुरू जी कृपा करके क्षण भर में ज्ञान के प्रकाश में बदल देते हैं–

गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु ॥
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु ॥
अंग – 293

परमात्मा के मार्ग पर चलना बहुत ही महान बात है। नि:शंक रूप से इस मार्ग पर चलते तो बहुत हैं लेकिन मंजिल–ए–मकसूद पर विरले ही पहुँच पाते हैं। क्योंकि –

कोटन मै नानक कोउ नाराइनु जिह चीति ॥
अंग – 1427

हैनि विरले नाही घणे फैल फकड़ु संसारु ॥
अंग – 1411

जग महि उतम काढीअहि विरले केई केइ ॥
अंग – 517

यह एक रहस्यात्मक बात है कि धार्मिक जगत में सभी लोग परमात्मा के कृपा पात्र बन जाने के लिए लालायित रहते हैं लेकिन बन वही पाते हैं जिनके ऊपर परमात्मा स्वयं कृपा करके उन्हें अपना बना लेता है। नाम जपने और सेवा करने की कोशिश तो बहुत सारे लोग करते हैं लेकिन एक जटिल प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि नाम जपने और सेवा करने का रस आता किसे है? यह भी सार्वभौमिक सत्य है कि जिस किसी को भी यह रस आ जाता है तो उसकी अवस्था इस प्रकार की हो जाती है –

किनका एक जिसु जीअ बसावै ॥
ता की महिमा गनी न आवै ॥ अंग – 262

नि:शंक रूप से गुरवाणी तो बहुत सारे प्रेमीजन पढ़ते हैं लेकिन गुरवाणी के प्रकाश में स्वयं को पढ़ने वाले विरले ही होते हैं। जो व्यक्ति स्वयं को पढ़ता है वह 'ज्ञानी' है जबकि दूसरों को पढ़ने वाला 'विज्ञानी' है –

बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरु परेसानी माहि ॥
अंग – 727

मन तूं जोति सरुपु है आपणा मूलु पछाणु ॥
अंग – 441

गुरमति मार्ग में स्वयं को पढ़ने की ही ताकीद की गई है –

प्रथमे मनु परबोधै अपना पाछै अवर रीझावै ॥
अंग – 381

यही आत्मा का मार्ग है और इसी मार्ग के सम्बन्ध में प्यारे महापुरुषों ने 'आत्म मार्ग' मैगजीन का संचालन किया।

(शेष पृष्ठ 29 पर)

सावणु तिना सुहागणी जिन राम नामु उरि हारु।।
(श्रावण माह की संक्रान्ति - 16 जुलाई, दिन सोमवार)

(डा.) जगजीत सिंह

रागु माझ बारह माहा महला 5
सावणि सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआरू॥
मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारू ॥
बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसनि सभे छारू ॥
हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारू॥
वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ संम्रथ पुरख अपारू॥
हरि मिलणै नो मनु लोचदा करमि मिलावणहारू॥
जिनी सखीए प्रभु पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार॥
नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारू ॥
सावणु तिना सुहागणी जिन राम नामु उरि हारू ॥
अंग - 135

शब्दार्थ - सावणि = श्रावण माह में, सरसी = स + रसी, रस वाली हरियाली। कामणी = जीव रूपी स्त्री, सच रंगि = सच्चे प्रभु जी के प्यार में, आधारु = सहारा विखिआ रंग = माया के रंग, दिसनि = दिखाई पड़ते हैं, छारु = स्वाह (राख), साधू = जिसने मन को साध लिया है, यानि कि गुरु, गुरु के साथ जुड़ा हुआ सन्त, ब्रह्मज्ञानी, हरि = जन, पीवणहारु = पीने योग्य, वणु तिणु = जंगल की घास, वनस्पति वृक्ष आदि, मउलिआ = हरा-भरा, करमि = कृपा से, मइआ = दया, सबदि = शब्द के द्वारा, उर = हृदय में।

अर्थ -

सावणि सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआरू॥

ज्येष्ठ अषाढ़ की अत्यन्त तीव्र गर्मी में जहाँ सारी वनस्पति सूख कर मुरझा जाती है, हरियाली कहीं दिखाई भी नहीं पड़ती है, उसी प्रकार से पति-परमेश्वर से बिछुड़ी हुई जीव रूपी स्त्री का कोमल हृदय विरह की आग को न सहारता हुआ दुखी होता है, इसीलिए गुरु महाराज जी ज्येष्ठ माह में प्रभु जी के चरणों के साथ जुड़ने की प्रेरणा करते हैं (हरि जेठ जुड़ंदा लोड़ीऐ) जिसके साथ ज्येष्ठ माह की गर्मी सुहावनी हो जाती है (हरि जेठ रंगीला तिसु धणी) उन प्रेमीजनों की जिनके माथे के भाग जागृत हो जाएँ (जिस के भागु मंथनि)। अषाढ़ माह की गर्मी तथा तपिश ज्येष्ठ से भी अधिक तीव्र व दुखदाई होती है। वे जीव रूपी स्त्रियां अषाढ़ की तपिश की भांति बेहाल होती हैं, जिनके हृदय में प्रभु पति निवास नहीं करता है। विरहाग्नि की तपिश अषाढ़ माह के तप्त सूर्य से भी अधिक दुखदाई होती है (असाड़ु तपंदा तिसु लगै हरि नाहु न जिना पासि) यह तप्त अषाढ़ माह उनके लिए सुहावना हो जाता है, जिन प्रेमीजनों का मन प्रभु चरणों में जुड़ जाता है (असाड़ु सुहंदा तिसु लगै जिसु मनु हरि चरण निवास)।

श्रावण माह में अषाढ़ की ब्राह्य तपिश समाप्त हो जाती है। इस माह में प्रभु कृपा के द्वारा प्राप्त वर्षा के कारण सूखा समाप्त हो जाता है तथा वनस्पति खिल कर हरियाली हो जाती है। वनस्पति, पशु, पक्षी, जीव-जन्तु सबको गर्मी से राहत मिलती है। फलस्वरूप सारे जीव-जन्तु सुख का सांस लेते हैं। ऐसे सुख भरे वातावरण में उस जीव रूपी स्त्री का हृदय खिल पड़ता है, हरा-भरा हो जाता है, जिसके मन में प्रभु प्यार, प्रभु चरणों के साथ जुड़ जाने के चाव उत्पन्न होता है। जिस प्रकार से सारी प्रकृति वर्षा के मिलाप से निखार में आकर खिल जाती है, सारा वातावरण सुहावना हो जाता है, इसी प्रकार से जीव रूपी स्त्री के मन में भी प्रभु पति के मिलाप की उमंग उत्पन्न होती है। प्रभु-प्यार में सराबोर स्त्री मिलाप के लिए विह्वल हो उठती है, उसका रोम-रोम प्रभु प्यार के मिलाप के लिए व्याकुल हो जाता है।

मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारू ॥

हृदय में मिलाप के लिए तड़प रखती हुई जीव रूपी स्त्री का मन तथा तन सच्चे परमात्मा पति के सच्चे प्यार में रंगा जाता है, परमात्मा का नाम, उसकी जिन्दगी का सहारा बन जाता है। प्यार प्रभु की कृपा है, गुरु जी की कृपा के द्वारा ऐसा सच्चा रंग चढ़ता है कि यदि एक बार मन सच्चे रंग में रंगा जाए तो यह रंग सदा-सदा के लिए चढ़ा ही रहता है, कभी भी उतरता नहीं है।

राम रंगु कदे उतरि न जाइ ॥
गुरू पूरा जिसु देइ बुझाइ ॥ अंग - 194

राम रंग, नाम रंग, अमृत नाम गुरु जी की कृपा दृष्टि है, यह रंग जब हरि-जन प्रभु प्यारों के रोम-रोम में कण-कण में समा जाता है तो अन्दर से अनहद संगीत की धुनों का अकथनीय रस उन्हें प्राप्त हो जाता है लेकिन यह मिलता भाग्यशाली लोगों को ही है -

लाल रंगु तिस कउ लगा जिस के वडभागा ॥
मैला कदे न होवई नह लागै दागा ॥ अंग - 808

इसके द्वारा रंग को चलूल = अत्यन्त गाढ़ा लाल आनन्द भरपूर कहा गया है, यह मजीठी रंग है जो एक बार चढ़ जाता है तो दोबारा उतरता नहीं है -

कहु नानक रंगि चलूल भए है
हरि रंगु न लहै मजीठा ॥ अंग - 1212

बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसनि सभे छारू॥

इसके विपरीत यानि कि मजीठी व पक्के रंग के विपरीत माया का रंग झूठा, जहरीला, दुखदाई व कच्चा है, नाशवान, धोखा व छल है। सच्चे प्रभु जी के सच्चे प्यार का त्याग कर दूसरे भाव में सांसारिक झूठी वस्तुओं के साथ प्यार करने में दुख ही दुख है, परेशानी ही परेशानी है। इस प्रकार का सन्देश गुरु जी अषाढ़ माह में दे चुके हैं।

जगजीवन पुरखु तिआगि कै माणस संदी आस ॥
दुयै भाइ विगुचीऐ गलि पईसु जम की फास ॥
अंग - 134

ऐसा उपदेश ही श्री गुरु जी ने बैसाख माह में दिया है, प्रभु जी से बिछुड़ी हुई स्त्री किस प्रकार से धैर्य रख सकती है? प्रभु रूपी सज्जन पुरुष को विस्मृत करके माया के झूठे मोह व धन्धों में पाश्चाताप ही पाश्चाताप है -

हरि साजनु पुरखु विसारि कै लगी माइआ धोहु ॥
पुत्र कलत्र न संगि धना हरि अविनासी ओहु ॥
*पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ॥*अंग - 133

जीव की यह त्रासदी है कि दुखों की खान यानि कि माया में से सुख की तलाश करता है, जहाँ से कि उसे घोर निराशा ही नसीब होती है, फलस्वरूप उसे दुख भोगना पड़ता है। अधूरे व नाशवान संसार से अविनाशी सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? सुख सागर प्रभु जी के साथ जुड़कर इसे सच्चे शाश्वत सुखों की प्राप्ति हो सकती है। प्रभु प्यारों को इसीलिए माया के झूठे स्वाद तुच्छ प्रतीत होते हैं। यह ठीक है कि नाम अमृत रस को चखने से पहले तो सांसारिक पदार्थ सच्चे व मीठे ही प्रतीत होते हैं, सुखों के श्रोत लगते हैं, लेकिन जब गुरु जी की कृपादृष्टि की बदौलत नाम रस अन्दर बस जाता है तो संसार का मायावी खेल छल कपट युक्त ही प्रतीत होता है। मायिक पदार्थों का मनमोहक रंग झूठा, विनाशकारी व विषयुक्त प्रतीत होने लगता है।

हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारू॥

सावन के महीने में जैसे वर्षा को बूँदें सुन्दर व सुहावनी लगती है। उसी प्रकार से प्रभु परमेश्वर के प्यार में जुड़ी हुई जीव रूपी स्त्री को प्रभु नाम का आत्मिक आनन्द देने वाली बूँदे प्यारी व मीठी लगती हैं। जीवात्मा गुरु की, गुरु प्यारों, गुरमुखों, गुरसिक्खों की संगत में नाम रूपी अमृत बूँद को भरपूर रूप से पीकर आनन्द में मखमूर हो जाती है। प्रभु जी की महिमा उसे मीठी लगती है। वह इन सबको प्रभु प्यारों के साथ मिलकर शौक से सुनता, पढ़ता व गाता है। नाम अमृत के साथ शरशार हुए गुरु प्रेमी को नाम रूपी अमृत किसी अन्य पदार्थ से किसी अन्य आनन्द की जिज्ञासा ही नहीं होती है।

जिन वडिआई तेरे नाम की ते रते मन माहि ॥
नानक अंम्रितु एकु है दूजा अंम्रितु नाहि ॥
अंग - 1238

उन्हें केवल और केवल प्रभु-अमृत-नाम की जिज्ञासा ही रहती है, अमृत नाम को प्रभु स्वयं ही गुरु के माध्यम से प्रदान करता है -

एको नामु अंम्रितु है मीठा जगि निरमल सचु सोई ॥
नानक नामु प्रभू ते पाईऐ जन कउ धुरि लिखिआ होई॥ अंग - 1259

प्रत्येक वस्तु के प्रफुल्लित होने के लिए अनुकूल वातावरण आवश्यक है। नाम अमृत की प्रफुल्लता नाम रसिक संत, साधू हरिजन की संगत अत्यावश्यक है, ऐसा गुरवाणी में बार-बार दर्शाया गया है। साधु जनों की महिमा करते हुए श्री गुरु अरजन देव जी सुखमनी साहिब की वाणी में इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

साध कै संगि अगोचरू मिलै ॥
साध कै संगि सदा परफुलै ॥
साध कै संगि आवहि बसि पंचा ॥
साधसंगि अंम्रित रसु भुंचा ॥ अंग - 271

साध कै संगि न मन ते बिसरै ॥
साधसंगि सरपर निसतरै ॥
साध कै संगि लगै प्रभु मीठा ॥
साधू कै संगि घटि घटि डीठा ॥ अंग - 272

सचु वापारू करहु वापारी ॥
दरगह निबहै खेप तुमारी ॥
मति पूरी अंम्रितु जा की दिसटि ॥
दरसनु पेखत उधरत स्रिसटि ॥
अमर भइे अमरा पदु पाइआ ॥
साधसंगि नानक हरि धिआइआ ॥ अंग - 293

इसी प्रकार से श्री गुरु जी ने संत की संगत की महिमा करते हुए फुरमान किया है कि नाम रसिक सन्तजनों की संगत मे जिज्ञासु को प्रभु जी के दर्शन दीदार प्राप्त होते हैं और प्रभु जी का अमृतमयी नाम मीठा लगने लग जाता है। अन्दर की गहराई में शून्य समाधि में अनाहद नाद की मीठी धुन प्रकट हो जाती है। ऐसी विसमादजनक अवस्था को गुरु जी इस प्रकार से कथन करते हैं -

संतसंगि अंतरि प्रभु डीठा ॥
नामु प्रभू का लागा मीठा ॥
सगल समिग्री एकसु घट माहि ॥

अनिक रंग नाना द्रिसटाहि ॥
नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु ॥
देही महि इस का बिस्रामु ॥
सुंन समाधि अनहत तह नाद ॥
कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥ अंग - 293

संत जना का पेखनु सभु ब्रहम ॥
संत जना कै हिरदै सभि धरम ॥
संत जना सुनहि सुभ बचन ॥
सरब बिआपी राम संगि रचन ॥ अंग - 294

आपि मुकतु मुकतु करै संसारू ॥
नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारू ॥ अंग - 295

"हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारू॥" पूर्ण रूप से इस सच्चाई को प्रकट करता है-

वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ संम्रथ पुरख अपारू ॥ हरि मिलणै नो मनु लोचदा करमि मिलावणहारू॥

परमात्मा के द्वारा सारा ही ब्रह्मांड अस्तित्व में आया है, वह स्वयं प्रत्येक कृत में विद्यमान है, व्यापक है। उसकी व्यापकता के कारण, उसके स्पर्श से सारा जगत, सारी वनस्पति, जंगल, पौधे, घास आदि हरे भरे होकर निखार में आ जाते हैं तथा आनन्द में झूमते हैं। ऐसा प्रभु जो सर्व समर्थ है, सब कुछ करने योग्य है, सर्व व्यापक है, बेअन्त है, उसे मिलने के लिए मेरा मन भी लालायित रहता है, परन्तु यह मिलाप उसकी अपनी कृपादृष्टि के कारण हो सकता है, यह अपनी चतुराई या सयानप के द्वारा सम्भव नहीं है-

बलिहारी कुदरति वसिआ ॥
तेरा अंतु न जाई लखिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
जाति महि जोति जोति महि जाता
अकल कला भरपूरि रहिआ ॥ अंग - 469

कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारू॥
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारू ॥
....
कुदरति पउणु पाणी बैसंतरू कुदरति धरती खाकु ॥
सभ तेरी कुदरति तूं कादिरू करता पाकी नाई पाकु॥
अंग - 454

श्री गुरु अरजन देव जी का फुरमान है -

सरब जोति महि जा की जोति ॥
धारि रहिओ सुआमी ओति पोति ॥ अंग - 294

सारा ब्रह्मांड, सारी कुदरत, सारे जीव-जन्तु, सारे प्राणी उस सर्व समर्थ प्रभु जी की रचना हैं, सबका आधार वह स्वयं है, इसलिए सारी कायनात में उस ईश्वरीय अस्तित्व के कारण सुन्दरता है, सजावट है, निखार है, ऊँची सुरति वालों के लिए सच्चिदानन्द के दर्शन दीदार हैं, सतगुरु कुदरत में बस रहे प्रभु जी से बलिहार जाते हैं। ऐसे सर्व समर्थ सर्व व्यापक प्रभु जी को मिलने के लिए जिज्ञासु के अन्दर तड़प का उत्पन्न होना स्वाभाविक बात है। उस प्रभु जी की बातों को सुन सुनकर मन आनन्दित हो जाता है। उसके नाम को जपने से चेहरे पर लाली आ जाती है। उसके मिलाप-मार्ग पर चलने से मेरा तप्त हृदय शीतल हो जाता है और दर्शनों से आन्तरिक हृदय निहाल हो जाता है। ऐसा अनुभव पंचम पातशाह वाणी के माध्यम से बख्खीश करते हैं -

सोइ सुणंदड़ी मेरा तनु मनु मउला
नामु जपंदड़ी लाली॥
पंधि जुलंदड़ी मेरा अंदरू ठंढा
गुर दरसनु देखि निहाली॥ अंग - 964

व्यक्तिगत तौर पर तथा सत्संगत में किया गया नाम स्मरण, गुरवाणी गायन, गुरु शब्द गायन तथा विचार के द्वारा मन की निर्मलता प्राप्त होती है तथा प्रभु मिलाप के लिए तड़प उत्पन्न होती है लेकिन मिलाप तो उस परम पिता की कृपादृष्टि है (करमि मिलावणहारु) रहमत है। उसकी कृपादृष्टि के बिना नाम स्मरण नहीं होता है, लिव नहीं लगती है, दुविधा समाप्त नहीं होती है और न ही आत्मा व परमात्मा का मिलाप ही हो पाता है -

नदरि करे ता सिमरिआ जाइ ॥
आतमा द्रवै रहै लिव लाइ ॥
आतमा परातमा एको करै ॥
अंतर की दुबिधा अंतरि मरै ॥ अंग - 661

नदरि करे ता मेलि मिलाए ॥
गुण संग्रहि अउगण सबदि जलाए ॥
गुरमुखि नामु पदारथु पाए ॥ अंग - 222

अपनी बल-बुद्धि पर अहंकार करना अहंकार वृत्ति है जो कि बिछोड़े का कारण है, मिलाप का रास्ता नहीं है। प्रभु का मिलाप परमेश्वर की दया दृष्टि के द्वारा ही हो पाता है, जिस प्रभु जी के हुक्म में जीव जगत में आता है, उस प्रभु की दया दृष्टि से ही उसके साथ पुनः मिलाप होता है-

जिनी सखीए प्रभु पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार॥
नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारू ॥
अंग - 134

जिन सखी, सहेलियों, प्रभु प्यारों, गुरमुखों, गुरसिक्खों, सत्संगियों को प्रभु कृपा की बदौलत प्रभु मिलाप हासिल हुआ है, मैं उनके ऊपर कुर्बान जाता हूँ। उनकी मनुष्य जन्म की यात्रा के कारण ही मैं बलिहार जाता हूँ, क्योंकि उनकी मनुष्य जन्म की यात्रा सफल हो गई है -

सफल सफल भई सफल जात्रा ॥
आवण जाण रहे मिले साधा ॥ अंग - 687

प्रभु दया का, मिलाप का, सफल यात्रा का, साधन क्या है प्रभु की दया, कृपा, दया दृष्टि, शब्द के द्वारा नाम के द्वारा क्रियाशील होती है। गुरु महाराज जी प्रार्थना के माध्यम से विनती करने के लिए हमारी अगुवाई करते हुए फुरमान करते हैं -

नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारू ॥

हे हरि! परमात्मा! मेरे ऊपर दया करो, अपने साथ मिलाप करवाने वाला, शब्द या नाम प्रदान करो, मन को संवारने वाले नाम के साथ जोड़ो।

जपुजी साहिब की अड़तीसवीं पउड़ी में सच्ची टकसाल का जिक्र है, जिसमें जत (ब्रह्मचर्य) धैर्य, ऊँची बुद्धि, विवेक बुद्धि, ज्ञान, तप साधना (तप ताउ), प्रेम के द्वारा अमृत नाम शब्द घड़ा जाता है, जिसकी बरकत के कारण ही मनुष्य सच्चा रूप होकर प्रभु के साथ मिलाप हासिल करता है -

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरू ॥
अहरणि मति वेदु हथीआरू ॥
भउ खला अगनि तप ताउ ॥
भाँडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि ॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल ॥ *अंग - 8*

लेकिन यह घड़ने की प्रक्रिया उनकी ही हो पाती है, जिनके ऊपर प्रभु जी की कृपादृष्टि होती है। वह मनुष्य अकालपुरुष की कृपादृष्टि के द्वारा निहाल हो जाते हैं -

जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥
नानक नदरी नदरि निहाल ॥ *अंग - 8*

सावणु तिना सुहागणी जिन राम नामु उरि हारू॥

मनुष्य जन्म रूपी श्रावण का माह केवल उन जीव स्त्रियों के लिए सफल व सुहावना है जो कि सुहागिनें हैं, सच्ची सुहागिनें हैं, जिनके हृदय में राम-नाम, अन्तःकरण रूपी गले में राम-नाम अमूल्य हार पहना हुआ है -

अंम्रित बनु संसारू सहाई आपि भए ॥
राम नामु उर हारू बिखु के दिवस गए ॥ अंग - 458

अर्थात जिनके हृदय रूपी गले में राम नाम का हृदय पहना हुआ है, वे माया के जहर से मुक्त हो गए। श्री गुरु तेग बहादुर जी का फुरमान है -

राम नामु उर मै गहिओ जा कै सम नही कोइ ॥
जिह सिमरत संकट मिटै दरसु तुहारो होइ ॥
अंग - 1429

राम नाम सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, कोई अन्य वस्तु इसके तुल्य नहीं हो सकती है। जो राम नाम को हृदय में धारण करते हैं, उनका आवागमन मिट जाता है, तथा हरि जी के साथ मिलाप हो जाता है, इसलिए हृदय में राम नाम रूपी हार पहनने वाली सुहागिनों का श्रावण (जीवन) सुहावना व सफल होता है - (सावण तिना सुहागणी जिन राम नामु उरि हारु।।)

तुखारी राग विच प्रापत गुरू नानक देव जी दा बारहमाहा - महीना सावण

रागु तुखारी छंत महला १

सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए ॥
मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए ॥
पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै
दामनि चमकि डराए ॥
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए ॥
हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी
कापड़ु तनि न सुखावए ॥
नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए॥
अंग - 1108

अषाढ़ माह की अत्यन्त तीव्र तपिश में वनस्पति सूख जाती है। उस तपिश के बाद श्रावण के माह में काली घटाएँ चढ़ती हैं, वर्षा खूब पड़ती है, पशु-पक्षी तथा मनुष्य तो क्या सूखा हुआ घास व वनस्पति भी खिल उठती है। चारों तरफ हरियाली को देखकर जीव के अन्दर से आवाज आती है कि हे मेरे मन! श्रावण माह की वर्षा की ऋतु आ गई है, बादल बरस रहे हैं, इसलिए तुम भी हरे-भरे हो जाओ, उल्लास में हो जाओ, प्रभु जी के मिलाप के लिए उपाय करो। (मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए।।) जिस प्रकार से परदेश गए हुए पति की पत्नी का हृदय काली घटाओं को देखकर तड़प उठता है। उल्लास को उत्पन्न करने वाला वातावरण उसे उल्टा दुखदाई प्रतीत होने लगता है तथा उसके अन्दर से एक आह निकलती है कि हे माँ! मुझे मेरा पति रोम-रोम में प्यारा लग रहा है लेकिन वह तो परदेश गया हुआ है। उसी प्रकार से प्रभु रूपी पति की बिछुड़ी हुई जीव स्त्री की वेदना है। पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए।। जब तक पति घर नहीं आता है तब तक बिछुड़ी हुई स्त्री आहें भर-भर कर बेहाल रहती है, आकाश में बिजली चमक-चमक कर उसे डराती है और दुख में वृद्धि करती है (सेज हिकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु भाए।।) बिछुड़ी हुई जीव स्त्री विलाप करती है कि हे पतिदेव! मेरी अकेली सेज मुझे दुखदाई प्रतीत हो रही है और पति के बिछोड़े का दुख मेरे लिए मृत्यु तुल्य हो गया है (हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए।।) जिस जीव रूपी स्त्री के अन्दर प्रभु-प्यार है उसे न तो नींद आती है और न ही भूख लगती है। उसे तो शरीर पर अच्छे वस्त्र धारण करना भी सुहाता नहीं है अर्थात शारीरिक सुखों के साधन भी उसके मन को आकर्षित नहीं करते हैं। (नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए।।) वही भाग्यशाली जीव रूपी स्त्री, प्रभु रूपी पति के प्यार की हकदार हो सकती है जो कि सदैव प्रभु जी की याद में लीन रहती है।

नानक दुखीआ सभु संसारु।।

सन्त बाबा वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

सन्त महाराज जी (संत ईशर सिंह जी महाराज, राड़ा साहिब वाले) जब दभलान हुआ करते थे, तो बहुत सारे प्रेमीजन पटियाले से मेरे साथ उनके दर्शनार्थ जाया करते थे। उनके पास बहुत सारे सवाल हुआ करते थे लेकिन जिस समय पटियाला स्टेशन से दभलान की टिकट लेकर बैठ जाते तो फिर सभी चुपचाप हो जाते थे और कोई भी आपस में बातचीत नहीं करता था।

एक दिन मैंने कहा, मित्रगणो! पहले तो आप लोग बहुत सारे सवाल कर रहे थे लेकिन अब कोई बोलता ही नहीं? वे कहने लगे, अब आप कोई बात मत कहो क्योंकि जिस प्रकार कोई जल श्रोत स्वत: धरती से प्रस्फुटित होकर बहने लगता है इस प्रकार से नाम की धारा स्वत: ही चलने लग पड़ी है। अब यह नाम की धारा वहाँ पर जाकर तो बहनी ही थी लेकिन उस दिशा में मुँह करने से भी चल पड़ती थी। यह नाम रसिकों या बन्दगी करने वालों की निशानी हुआ करती है। जब हृदय में नाम बस गया तो फिर उसका प्रभाव तो पड़ना ही है। दूसरी तरफ आप किसी बुरे व्यक्ति का ध्यान धर लो, किसी ईर्ष्यालु का ध्यान धर लो, किसी दुश्मन का धर लो उसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। जब भी आप किसी साधू का ध्यान धरोगे तो उसका प्रभाव पड़ना निश्चित ही है। चाहे कोई ट्रक चलाने वाला है, चाहे कोई दुकानदार है, चाहे कोई हल चलाने वाला है, उसका प्रभाव तो पड़ना ही है और फिर साधू तो होता ही साधना सम्पन्न है। साधू के लिए जरूरी नहीं है कि वह किसी डेरे में ही जाकर बैठे। ठीक है साधू डेरे में जाकर बैठता है, जिससे संसार का उद्धार होता है। दरअस्ल हम लोग भेष वगैरह को देखकर भ्रम में पड़ जाते हैं लेकिन साधु संगत जी! साधू बनना बहुत कठिन है। सिक्ख बनना कोई सरल कार्य नहीं है बल्कि यह बहुत कठिन कार्य है।

अत: महाराज जी कहने लगे, प्रेमीपुरुष! तुम सिक्खों की सेवा करो तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जाएगा तुम्हारी ईंटें बहुत पक्की तथा बढ़िया निकलेंगी, फलस्वरूप तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जाएगा। तुम जाकर गुरसिक्खों को बुलाकर उनकी सेवा करो। अब वह बहुत प्रसन्न हो गया और घर आकर उसने अपने भाईचारे को बतलाया कि उसने गुरू जी के हुक्मानुसार गुरसिक्खों को बुलाया है और वैसे भी लाहौर में बहुत अधिक करनी कमाई वाले सिक्ख हैं। दरअस्ल इस प्रकार के सिक्ख तो प्रत्येक जगह ही हुआ करते हैं क्योंकि जिन्होंने गुरू की चाकरी की होती है, उनके ऊपर गुरू की कृपा हो ही जाती है, फलस्वरूप उनके वचन भी पूरे होने लग पड़ते हैं। अत: उसने अपना भाईचारे को बतलाया कि इस प्रकार से गुरसिक्खों को घर बुलाकर उनसे अरदास करवानी है। उस समय सारे गुरसिक्खों को निमन्त्रण भेज दिया और तिथि निर्धारित कर दी। साधु संगत जी! यह मर्यादा हुआ करती है, गुरू दशमेश जी का यह वचन है कि जहाँ पर पाँच गुरसिक्ख होंगे वहाँ पर मैं स्वयं मौजूद हूँगा। जिस समय दशमेश महाराज जी परलोक गमन करने लगे उस समय गुरसिक्खों ने एक सवाल किया था कि महाराज जी! हम गृहस्थी लोग हैं और हमारी विभिन्न प्रकार की जरूरतें हैं, जैसे किसी की भैंस बीमार हो गई, किसी का लड़का बीमार हो गया, किसी का कुछ और हो गया। अब मेरे पास कई लोग आते हैं कि मेरे खेतों में से पानी नहीं निकलता है। अब इसका क्या उपचार है? न धरती को उखाड़ कर देख सकते हैं कि पानी कहाँ पर है? महाराज जी को याद करते हैं कि महाराज जी कृपा करो। महाराज जी ने परलोक गमन करने के समय एक वचन किया था जिस समय सिक्खों ने विनय की कि महाराज जी! हम गृहस्थी लोगों के कारज कैसे सिद्ध होंगे क्योंकि हमें तो प्रत्येक समय जरूरतें घेरकर रखती हैं। महाराज जी कहने लगे देखो तुम पाँच गुरसिक्खों का अपने घर बुलाना और उन्हें श्रद्धापूर्वक भोजनादि ग्रहण करवाकर उनसे अरदास करवाना। तुम उस समय विश्वास रखना कि उनके अन्दर मैं ही बैठा हुआ हूँ। इतना बड़ा विश्वास होना चाहिए मैंने इसे आजमा कर देखा हुआ है।

छोटी-छोटी बातें हैं एक प्रेमीपुरुष आया कि महाराज जी मेरी भैंसों के थन बन्द हो गए हैं। मैंने कहा कि तुम किसी अच्छे पशु चिकित्सक को बुलाओ लेकिन वह पीछे ही पड़ गया। मैंने कहा कि भाई तुम पाँच सिक्खों को बुलाओ और श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करो। सिक्ख कैसे हों? सिक्ख इस प्रकार के हों जो कि गुरू को प्यार करने वाले हों, ऐसा नहीं कि स्वयं को प्यार करने वाले हों और गुरू को हमेशा भूले ही रहते हों।

तुम रसिक सिक्खों को अपने घर बुलाओ जो कि गुरू के चरणों में स्वयं को अर्पित करके बन्दगी करते हों। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी का प्रचार व प्रसार कार्य करते हो क्योंकि श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी हमारे गुरू हैं और हमने श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के सिद्धान्त से बाहर जाना ही नहीं है, उससे आगे सोचना ही नहीं है। हमने तो अपने गुरू की बात माननी है। मैंने कहा तुम श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करना, जब वे आएँगे तो उनके चरण धोना उसके बाद उन्हें भोजन ग्रहण करवाना। सबसे पहले उन्हें खीर खिलाना, फिर दूसरी चीजें खाने के लिए देना और जितने देर तक वे भोजन ग्रहण करें और तुम्हारे घर में मौजूद हों, तब तक तुमने सोचना कि मेरे घर में गुरू दशमेश जी पधारे हुए हैं। यदि तुम्हारे अन्दर इतना विश्वास होगा तो फिर तुम्हारी सारी मनोकामनाएँ सम्पूर्ण हो जाएँगी लेकिन यदि तुम सोचोगे कि मेरे घर अमुक-अमुक व्यक्ति आए हुए हैं और अमुक व्यक्ति इस प्रकार का है, फिर यह नहीं हो पाएगा। अतः तुम पाँचों को इकट्ठे रूप में देखना यानि पाँचों में गुरू को देखना। कहने लगा, बाबा जी! ठीक है जी।

वह व्यक्ति मेरे पास पुनः आ गया कहने लगा बाबा जी! सिंह तो आ गए लेकिन वे अपने चरण नहीं धुलवाते हैं। अब समस्या हो गई क्योंकि वे तो दूसरों के चरण धोने वाले हैं, इसलिए अपने कैसे धुलवाएँ? मैंने कहा कि ऐसे करो एक खुले पात्र में पानी रख लो और उन्हें कहो कि उस पानी में पैर रखकर आगे निकल जाएँ। जब वे ऐसा करेंगे तो उस पानी को अपने पशुओं को पिला देना।

तीसरे दिन वह दूध लेकर आ गया। उन परिवारों की महिलाएँ दीवान के अन्दर ही बैठी हुई हैं। मैंने कहा, क्या हाल है तुम्हारी भैंसों का? वह कहने लगा, जी सभी के थन खुल गए हैं, पता नहीं उन्हें क्या हो गया था।

एक प्रेमी आया, कहने लगा, महाराज जी! मेरी जमीन में से पानी ही नहीं निकल रहा है। मैंने कहा पाँच सिंहों को भोजन करवाओ। श्रद्धापूर्वक सिर पर भोजन उठाकर लेकर जाना और इस तरह से समझना कि मेरे साथ गुरू जी जा रहे हैं। तुम चलते जाना चलते जाना, जिस जगह पर जाकर तुम्हारे मन में आ जाए कि यहाँ ठीक है वहीं पर रुक जाना। वहीं पर अरदास करवा कर बोरिंग करवाओ, पानी निकल आएगा। वह बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि ऐसा करने के बाद पानी निकल आया। कहने लगा जी मेरे खेत में तो पानी है ही नहीं था, मैंने कहा गुरू महाराज जी कहीं गए तो नहीं हैं न? उन्हीं का वचन है -

पंथ खालसा खेती मेरी, करहूं संभाल मैं तिस केरी।

अपने खेत को छोड़कर क्या हम अन्यन्त्र कहीं जाते हैं? नहीं हम अपने खेत में ही रहते हैं, गुरू ने अपना शरीर अलोप करके पाँचों के अन्दर ही डाल दिया है। अतः यदि श्रद्धा है फिर तो बात बन जाएगी अन्यथा कुछ भी होने वाला नहीं है।

अतः महाराज जी कहने लगे, लो भाई तुम मन लगाकर सिक्खों की सेवा करना तुम्हारा सारा कार्य सिद्ध हो जाएगा। उसने लंगर तैयार कर लिया और बड़े ही प्यारपूर्वक ढंग से संगत को भोजन ग्रहण करने के लिए लेकर आया और सबको श्रद्धापूर्वक भोजन ग्रहण करवाया। उसके बाद अरदास होने लगी। इतने में वहाँ पर एक गुरसिक्ख आ गया जिसे कि बहुत भूख लगी हुई थी और वह बीतराग अवस्था का सिक्ख था वह कहने लगा, भाई बुद्धू! मैंने सुना है कि तुम्हारे घर में गुरसिक्ख आए हैं, मुझे भी बहुत भूख लगी हुई है इसलिए मुझे भी खाना खिला दो। भाई बुद्धू को भी थोड़ा सा अभिमान था कि मेरे घर इतने बड़े-बड़े सिक्ख आए हुए हैं और वह तो एक अत्यन्त गरीब सा सिक्ख था जिसके पैरों में जूते नहीं, फटे पुराने कपड़े हैं, धूल से लथपथ हैं। भाई बुद्धू बोला, तुम अब कहाँ से आ गए हो? जब लंगर बँट रहा था उस समय तुम कहाँ थे? तुम्हें अब हम कहाँ से लंगर खिला दें? उधर अरदास हो रही है और मैं तुम्हारे लिए स्पैशल खाना लगवाऊँ? वह बोला, भद्रपुरुष! मुझे बहुत भूख लगी है। तुमने इतने गुरसिक्खों को बुलाया है मुझे भी उन्हीं में गिन लो। बुद्धू ने बहुत अपशब्द कहे, कहने लगा तुमने शीशे में अपना मुँह देखा है? उस समय उस गुरसिक्ख (भाई लक्खू) ने उसे समझाने के लिए इस प्रकार से फुरमान किया -

धारना - तैनूं सि्खी दी समझ ना आई,
फि्के काहतों बोल बोलदैं।

नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ ॥
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ॥
फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ ॥
फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ ॥
अंग - 473

कहने लगे कि जो किसी को अपशब्द बोलता है उसे दरगाह में से नीचे फेंक दिया जाता है। दरअस्ल गुरसिक्खी में मीठा बोलने की ही ताकीद है, ऐसा नहीं है कि किसी पर भी टूट कर पड़ जाओ और उसे अपशब्द बोलो। कड़वा बोलने से तो वैसे भी बहुत बड़े-बड़े नुक्सान हो जाया करते है। हिन्दोस्तान का सबसे बड़ा युद्ध जिसे कि महाभारत का युद्ध कहा जाता है, एक कड़वा बोलने की वजह से ही हुआ था। पांडवों ने अपने राज्य में एक राज महल बनवाया जिसे कि माया महल भी कहते हैं। वह इतना अद्‌भुत था कि उसमें धरती तो पानी प्रतीत होती थी और पानी धरती प्रतीत होती थी। बन्द दरवाजे खुले प्रतीत होते थे और खुले दरवाजे बन्द प्रतीत होते थे। दुर्योधन को तथा अन्य लोगों को उसके उद्‌घाटन के अवसर पर आमन्त्रित किया गया। जब दुर्योधन वहाँ से गुजरने लगा। तो वह भ्रमित हो गया कि इधर सूखी जगह है जबकि वह पानी था। उसकी बनावट ही ऐसी थी। अब वह पानी में गिर गया और काफी घबरा भी गया। आगे जाकर जब दरवाजे से निकलने लगा तो जो दरवाजा खुला था, उसमें से तो निकला नहीं बल्कि जो दरवाजा वास्तव में बन्द था लेकिन प्रतीत खुला हो रहा था, उसमें से जब वह निकलने लगा तो उसका माथा दरवाजे से लगा। ऊपर द्रौपदी बैठी थी, वह बहुत जोर से हँसी तथा कह बैठी कि अन्धे की सन्तान भी अन्धी ही है। वह बोला, ठीक है मैं अन्धा हूँ लेकिन तुम्हें ऐसा सबक सिखाऊँगा कि तुम आजीवन याद रखोगी और मैं तुम्हें भरी सभा में इसका जवाब पूछूँगा। इसी के फलस्वरूप फिर क्या हुआ?

अंदरि सभा दुसासणै मथैवाल दोपती आँदी।
दूता नो फुरमाइआ नंगी करहु पंचाली बाँधी।
भाई गुरदास जी, वार 10/8

इसका परिणाम यह हुआ कि महाभारत का बहुत बड़ा युद्ध हुआ। दूसरी तरफ मीठा बोलने से बड़े से बड़ा कार्य आसान हो जाता है।

अतः उस गुरसिक्ख ने जब ऐसी बात बोली तो भाई बुड्ढा कहने लगा तुम क्यों ऐसी बातें करते हो? एक तरफ सारी संगत है और दूसरी तरफ तुम हो?

गुरू दशमेश जी जिसे समय शारीरिक तौर पर दस वर्ष की बाल्यवस्था में थे तो उस समय मसन्दों को उन पर अभी श्रद्धा नहीं आ रही थी कि यह तो बच्चा ही है। सीहां मसन्द तथा चेतू मसन्द जैसे चोरियाँ किया करते थे। एक दिन की घटना यह हुई कि वहाँ पर एक मदारी भालू को लिए जा रहा था। महाराज जी ने उसे बुलवा लिया और कहा कि मदारी! तमाशा दिखाओ! मसन्द कहने लगे, महाराज जी इस समय आप गुरुगद्दी पर बैठे हो और सारी संगत भी बैठी हुई है। यह बच्चों वाला कार्य आप बाद में कर लेना, यह आप क्या करने जा रहे हो? आपने तो सारी संगत के सामने कह दिया है कि तमाशा दिखाओ जबकि चहुँओर रूहानी माहौल बना पड़ा है। ये सारे लोग तमाशा देखकर हँसेंगे। हमारी भी ड्यूटी है कि हम आपको कुछ समझाएँ। महाराज जी बोले, तुम लोग चुप रहो क्योंकि तुम्हें रहस्यात्मक बात का पता नहीं है।

अब वह भालू नाचने लग पड़ा और कई प्रकार के तमाशे दिखाने लग पड़ा वहीं पर भाई कीरतिया. जो कि महाराज जी को चवर करने वाला था, भी खड़ा हुआ था, वह भी जोर-जोर से हँसने लग पड़ा। जब महाराज जी ने उसे हँसते हुए देखा तो आप बोले, भाई कीरतिया! तुम मत हँसो। वह बोला, महाराज जी! जब सभी लोग हँस रहे हैं तो मैं क्यों न हसूँ?

गुरू जी बोले, यह तुम्हारा पिता है।

उसने दूसरी तरफ आकर अपना चवर रख दिया और महाराज जी के चरणों की तरफ खड़ा होकर कहने लगा, महाराज जी! मेरे पिता जी नौवें महाराज जी की चवर किया करते थे, मैं उनका पुत्र हूँ। जब वे आजीवन नौवें महाराज जी की सेवा करके भालू बन गए तो फिर मैं क्या बन्दर बनूँगा? वह क्रोध में आ गया।

महाराज जी बोले, प्रेमीपुरुष! बात को समझा करते हैं, गुरू-पीरों के साथ इस प्रकार के उलाहनों भरा बर्ताव नहीं किया करते हैं क्योंकि उन्हें किसी प्रकार की परवाह भी नहीं हुआ करती है। गुरू पीर तो सबका उद्धार ही किया करते हैं क्योंकि उनके पास युक्ति होती है। वे युक्ति से मुक्ति करते

हैं। थोड़ी देर रुको, तुम्हें सारी बात का पता लग जाएगा।

उस समय महाराज जी मदारी को कहने लगे, प्रेमीपुरुष! तुमने इसे बेचना है? वह बोला, हाँ जी।

गुरू जी ने कहा, कितने पैसे लोगे?

वह बोला, जी 200 मोहरें लूँगा।

महाराज जी ने खजांची को कहा कि इसे 200 मोहरें दे दो। जब कीमत देने लगे तो वह अपनी जुबान से पीछे हट गया। कहने लगा मैंने बेचना ही नहीं है।

महाराज जी बोले, अब यह भालू हमने जाने नहीं देना है क्योंकि यह हमारा सिक्ख है। अतः महाराज जी ने उस भालू को रख लिया और उस मदारी को भेज दिया। आपने सेवादारों को कहा कि प्रसाद बनाकर लाओ। महाराज जी ने प्रसाद स्वयं लिया और अपना शीत प्रसाद, अरदास करने के बाद, उस भालू को भी दे दिया। वह भालू प्रसाद को खाकर वहीं जमीन पर गिर गया। गिरने के बाद उसके अन्दर से रूह बाहर निकलनी शुरू हो गई। देखते ही देखते सारे पहचान गए कि यह तो भाई कीरतिए का पिता शोभाराम है। वह बार-बार गुरू जी के चरणों पर नमस्कार करता जा रहा है। भाई कीरतिया भी हैरान हो रहा है। गुरू जी बोले भाई कीरतिया! तुम अब अपने पिता जी को पूछ लो।

वह बोला, पिता जी! आप तो बहुत महान सेवा में लगे हुए थे, यह सब आपके साथ क्या हो गया? उसने बताया, बेटा! सेवा तो मैं बहुत किया करता था लेकिन मैंने सिक्खी पर सूक्ष्म तौर पर विचार नहीं की। एक दिन की घटना यह घटित हुई कि मैं गुरू नौवें महाराज जी के दरबार में प्रसाद का वितरण कर रहा था। वहाँ पर एक गुरसिक्ख गुरू जी को नमस्कार करने आया, जिसका नाम भाई धन्ना था, वह बीतराग अवस्था का स्वामी था यानि कि वह अभेदावस्था या ब्रह्मज्ञान की अवस्था का गुरसिक्ख था। वह अपनी बैलगाड़ी लेकर दसवन्द देने के लिए गुरू जी के पास आया था। फलस्वरूप उसके ऊपर इतनी अधिक धूल पड़ी हुई थी कि उसे पहचानना भी अत्यन्त मुश्किल ही था। उसका मुँह कपड़े आदि सब कुछ धूल से लथपथ थे। वह रास्ते में ही अपने बैलगाड़ी को रोककर सीधा मेरे पास प्रसाद लेने के लिए आ गया। उसने अपनी काँख में बैल हाँकने वाली छड़ी दबाई हुई थी और आगे-आगे होकर प्रसाद लेने की जल्दी कर रहा था, मैं प्रसाद का वितरण करते हुए दूसरी तरफ चला गया। उसने देखा कि मेरी बैलगाड़ी तो चल पड़ी है, इसलिए वह दौड़कर दूसरी तरफ पुनः मेरे पास प्रसाद लेने के लिए आ गया और बोला, भाई साहिब जी! मुझे पहले प्रसाद दे दो क्योंकि मेरे बैल चल पड़े हैं। मैंने कहा, तुम क्या भालू की भांति कभी इधर कभी उधर छलांगें लगा रहे हो? पहले अपनी शक्ल तो देख लो?

बहुत सारे लोग बहुत लम्बे समय तक सन्तजनों के पास रहने के बाद भी इस प्रकार के फीके शब्दों का प्रयोग करते हैं और सिक्खी के मूल को तनिक भी नहीं समझते हैं।

मेरे इस प्रकार के व्यवहार से उसने सहज स्वभाव ही कह दिया, प्रेमीजन! मैं तो भालू नहीं हूँ लेकिन तुम अवश्य बनोगे। बाद में मुझे पता चला कि यह तो भाई धन्ना है। उसने नीचे गिरा हुआ प्रसाद का कण उठाया और अपने मुँह में डालकर वापिस लौट गया।

गुरू नौवें महाराज जी को मैंने विनती की कि महाराज जी! भाई धन्ना मुझे इस प्रकार से कहकर चला गया है। महाराज जी बोले, प्रेमी पुरुष यह तो टल नहीं सकेगा इसलिए तुम्हें तो अब भालू बनना ही पड़ेगा।

मैंने पूछा, महाराज जी! मेरा उद्धार किस प्रकार से होगा? मैंने तो आजीवन आपकी सेवा की है?

महाराज जी बोले, अपने दसवें स्वरूप में हम अपने हाथों से तुम्हारा उद्धार करेंगे क्योंकि तुम्हारे द्वारा की गई सेवा व्यर्थ नहीं जाएगी। दूसरी तरफ यह भी सत्य है कि हम अपने सिक्ख के वचन को बदल नहीं सकते हैं क्योंकि गुरवाणी का फुरमान है -

धारना - भावें चंदरमा नाश हो जावे,
संताँ दा बोल ना टले।

निसि बासुर नखिअत्र बिनासी रवि ससीअर बेनाधा॥
गिरि बसुधा जल पवन जाइगो
ईक साध बचन अटलाधा ॥ अंग - 1204

'निसि' रात को कहते हैं और बासुर दिन को कहते हैं 'नखिअत्र' तारे को कहते हैं, इसके साथ ही यदि सूर्य और चन्द्रमा का भी नाश हो जाए तो भी सन्तजनों का वचन टला नहीं करता है। यदि वे सहज स्वभाव भी बोल दें तो भी वह होकर ही रहता है।

गुरू सातवें महाराज जी के समय भाई गउरा जी हुए हैं

जो कि भाई भगतू जी के बड़े सपुत्र थे। आपकी सेवा में एक गुरसिक्ख थे जिसे भाई गोदड़िया जी कहा करते थे। एक दिन भाई गउरा जी किसी सेवादार को पीटने लग पड़े क्योंकि उससे कुछ गलती हो गई थी, भाई गोदड़िया जी बोले, भाई गउरा! तुम इसे क्यों मार रहे हो? भाई गउरा बोला, तुम चुप करके बैठे रहो, तुम्हें क्या पता है कि राजभाग क्या होता है?

भाई गोदड़िया बोला, इसे तो अहंकार का बहुत अफारा चढ़ा हुआ है। 'अफारा हुआ है' कहने की देर थी कि उसे अफारा हो गया और वह धरती पर लोटने लग पड़ा। बैद्य कहने लगे, सरदार जी! यह अफारा तो बहुत बुरी तरह का है, तुमने ऐसा क्या खा लिया है? वह बोला, मैंने खाया तो कुछ नहीं है लेकिन वह जो गोदड़िया है, उसने मुझे कह दिया था कि इसे तो अहंकार का अफारा चढ़ा हुआ है, उसी समय से मुझे अफारा हो गया है। जब वे लोग भाई गोदड़िया के पास गए तो उनके पैरों को जो मिट्टी लगी हुई थी, उसने वह मिट्टी उठाकर दे दी और कह दिया कि यह मिट्टी उसके पेट को लगा दो। जब वह मिट्टी भाई गउरा के पेट को लगाई तो उसका अफारा ठीक हो गया। अब भाई गउरा बहुत घबरा गया, कहने लगा, भाई गोदड़िया! तुम्हारी सेवा लेखे में पड़ गई है, अब तुम घर को चले जाओ।

भाई गोदड़िया जी घर को चले गए। उसके परिजनों ने देख लिया कि उनका बुजुर्ग घर लौट आया है, अतः अब इसे कामकाज में लगाया जाए।

उसके परिजन जो काम उसे कहते रहते थे वह उसे करते रहते थे क्योंकि आप जी तो सदैव नाम में मस्त रहा करते थे।

गुरू दसवें महाराज जी को जिस समय भाई गोदड़िया जी मिले उस समय दशमेश जी ने फुरमान किया कि यह सिक्ख सारे मालवे का उद्धार कर देने की सामर्थ्य रखता है। यह बहुत उच्चावस्था का गुरसिक्ख है। चैत्र का महीना था, एक दिन उसके परिजनों ने उसे सरसों की फसल उखाड़ने के लिए लगा दिया। रेतीला खेत था, उसने जड़ से ही उखाड़-उखाड़ कर ढेर लगा दिया। इतने में कोई मिलने वाला आ गया। वह बोला भाई गोदड़िया! क्या कर रहे हो? यह हमारा स्वभाव भी होता है कि हम व्यक्ति को काम करते हुए देख लेते हैं लेकिन फिर भी पूछने लग जाते हैं कि तुम क्या कर रहे हो? उसने कहना तो था कि सरसों की जड़ें उखाड़ रहा हूँ लेकिन उसके मुँह से निकल गया कि अपने घर वालों की जड़ें उखाड़ रहा हूँ।

सात दिनों के अन्दर-अन्दर सारे पुत्र, पुत्रवधुएँ व अन्य बच्चे परलोक सिधार गए, एक भी नहीं बचा। अब उसे कोई गम नहीं, कोई अफसोस नहीं क्योंकि वह जीवन मुक्त की अवस्था वाला गुरसिक्ख था। उसके बाद आप इधर उधर भ्रमण करने लग पड़े। एक दिन चले जा रहे थे और जैसे अपना गुरुद्वारा है, इस प्रकार से आ गए। सामने से एक बुजुर्ग माता आ गई, कहने लगी महापुरुषो! आप ठहरो मैं आपके लिए दही लेकर आती हूँ।

वह घर गई जब उसने देखा तो दही ज्यादा नहीं था, बल्कि थोड़ा ही था, उसने मिर्चें थोड़ी ज्यादा डाल दीं। जब दोबारा बर्तन लेने आई तो कहने लगी बाबा जी! दही कैसा था? आप बोले, सर्पडसी! दही तो ठीक था लेकिन तुमने मिर्चें ज्यादा डाल दी थीं। वह वापिस घर लौट आई। जब वह गुहारे में से उपलें निकालने लगी तो वहीं पर साँप ने डस लिया और मर गई। अतः साधू का वचन टला नहीं करता है इसीलिए महात्मा को बहुत सोच कर बोलना पड़ता है। वे कभी भी किसी को नहीं कहते हैं कि तुम मर जाओ या तुम्हारा बुरा हो जाए। वे ऐसा कभी भी नहीं कहते हैं। अतः इस प्रकार से बहुत सारे महात्मा अभेदावस्था वाले हुआ करते हैं यानि कि वे जीवन मुक्त होते हैं -

प्रभ की आगिआ आतम हितावै ॥
जीवन मुकति सोउ कहावै ॥
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु ॥
सदा अनंदु तह नही बिओगु ॥
तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी ॥
तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी ॥
तैसा मानु तैसा अभिमानु ॥
तैसा रंकु तैसा राजानु ॥
जो वरताए साई जुगति ॥
नानक ओहु पुरखु कहीऐ जीवन मुकति ॥

अंग - 275

वे प्रत्येक समय परमात्मा के साथ जुड़े होने के कारण, परमात्मा के साथ उनका प्रेम इस प्रकार से रहता है जैसे कि वे आमने सामने ही हो। प्रभु का नाम तो उन्हें कभी भी विस्मृत नहीं होता है, फलस्वरूप उनकी जिह्वा पर प्रत्येक समय ही वाहिगुरू विद्यमान रहता है। गुरू जी इस प्रकार से

फुरमान करते हैं –

धारना – प्रभ जी दा वासा है, संताँ दी रसना उते।

सन्त महाराज बाबा अतर सिंह जी रेरू साहिब वाले एक नई घोड़ी लेकर आए। घोड़ी को जब महाराज जी बाहर खेतों में लेकर गए तो उसने थका डाला। फिर वह अचानक खड़ी हो गई और उसने अपना पिछला हिस्सा ऊँचा कर दिया। फलस्वरूप बाबा जी नीचे गिर गए। मन में ख्याल आया कि रोज इस घोड़ी को पालते हैं, इसकी सेवा करते हैं, मालिश करते हैं, फिर भी यह इस प्रकार का व्यवहार करती है। उन्होंने नीचे से उठाकर एक ढेला उस घोड़ी को मारा और साथ ही कह दिया 'चोरों के पास जाने वाली' सवारी भी ठीक नहीं करवाती है।

जब सुबह ब्रह्ममुहुर्त में उठे तो सेवादार बाबा जी के पास आकर कहने लगे बाबा जी! अपनी घोड़ी को तो चोर ले गए हैं।

बाबा जी बोले, कोई बात नहीं आप चिन्ता मत करो, हमारे ही मुख से निकल गया था कि 'चोरों के पास जाने वाली सवारी भी ठीक नहीं करवाती है।' इस प्रकार से महात्मा के द्वारा सहज स्वभाव बोला हुआ वचन भी पूरा हो जाता है।

इसी प्रकार से इधर भाई बुद्धू के घर में गुरसिक्खों द्वारा अरदास की जा रही है। उधर भाई लक्खू का निरादर हो गया और भाई बुद्धू ने उसे अपशब्द कह दिए। अब अरदास तो हो रही है कि महाराज जी! भाई बुद्धू ने गुरसिक्खों की खूब सेवा की है, अतः आप कृपा करना ताकि इसका ईंटों का 'आवा' पक जाए तथा सारी ईंटें पकी हुई निकलें। उसी समय भाई लक्खू ने ऊँची आवाज में कह दिया आवा पकेगा नहीं कच्चा रहेगा। तीन बार इसे दोहरा कर कह दिया।

उस समय भाई बुद्धू कहने लगा, कच्चा कैसे रहेगा? मैं तो पहले ही खोल कर देख भी आया हूँ? गुरसिक्खों को भोजन तो मैंने बाद में खिलाया है? वह बोला, जाओ! पक्की ईंटें भी कच्ची बन जाएँगी। उसके बाद जब उसने आवे में सुराख करके देखा तो हैरान रह गया कि वह ईंटें तो पूरी तरह से पुनः मिट्टी जैसी ही हो चुकी थीं।

वह अफसोस में चला गया कि गुरू साहिब ने वचन किया हुआ है लेकिन वह गलत कैसे हो सकता है? उस समय वह बहुत ही उदासी की मुद्रा में श्री अमृतसर साहिब श्री गुरू जी के पास आ जाता है और उसने विनती की महाराज जी! मैंने संगत को लंगर-पानी भी ग्रहण करवा दिया और आपने भी वचन किया था कि ईंटों का आवा पक्का निकलेगा लेकिन आवा तो बिल्कुल कच्चा रह गया फलस्वरूप मेरी तो सारी दौलत मिट्टी ही बन गई है। मैं तो सड़क पर आने जैसा हो गया हूँ। पातशाह! उन ईंटों को कौन खरीदेगा? मैं तो जीते जी मर गया।

उस समय महाराज जी बोले, भाई बुद्धू! हमने तो वचन किया था कि तुम गुरसिक्खों को भोजन करवाओ वह तुमने करवा दिया? वह बोला, हाँ महाराज जी! गुरसिक्खों ने अरदास की? वह बोला, हाँ महाराज जी! गुरू जी बोले, भाई बुद्धू! तुम्हारे दान व सेवा में कोई विघ्न पड़ गया है। आप इस प्रकार से फुरमान करते हैं –

धारना – पै गई भंगणा बुधू कोई भारी,
सिख कोई भुखा रहि गिआ।

गुरू जी बोले, भाई बुद्धू! यह तो ठीक है कि तुमने प्यारपूर्वक सेवा की है लेकिन हमें यूँ प्रतीत हो रहा है कि शायद मेरा प्यारा कोई गुरसिक्ख भूखा ही लौट गया है।

सतिगुर कहयो 'जु संगति भोजन।
बिरथा गयो तहाँ ते को जन।

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1837

वह बोला, महाराज जी! यह बात तो जरूर हुई है –

भयो दोश कुछ लेहु बिचारी।
सुनि बुधू कर जोरि उचारी।

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1837

भाई बुद्धू बोला, महाराज जी! वहाँ पर एक मस्ताना सा सिक्ख प्रायः घूमा करता है। पहले तो वह लुटेरा था लेकिन बाद में भाई प्राणा उसे सिक्खी में ले आए। महाराज जी! वह प्रायः लोगों के साथ लड़ता ही रहता है (यानि कि भाई बुद्धू अपनी सफाई देने लग पड़ा) महाराज जी! जिस समय अरदास हो रही थी तो उस समय वह आकर कहने लगा कि मुझे भोजन खिलाओ। मैंने उस समय उसे भोजन नहीं करवाया।

गुरू जी बोले, भाई बुद्धू! तुमने तो सारी बात ही बिगाड़ कर रख दी है। जिस भाई लक्खू को तुम कहते हो कि वह यूँ ही घूमता रहता है वह तो सदैव मेरे अन्दर ही रहता है और मैं सदैव उसके अन्दर रहता हूँ। वह तो मेरा अनन्य सिक्ख

है-

दास अनिंन मेरो निज रुप ॥
दरसन निमख ताप त्रई मोचन
परसत मुकति करत ग्रिह कूप ॥ अंग - 1252

वह तो मेरा सिक्ख है और प्रत्येक समय मेरे अन्दर ही रहता है।

गुरू महाराज जी फुरमान करते हैं कि मेरे गुरसिक्खों की, की गई सेवा मुझे अच्छी लगती है -

सेव करी इनही की भावत,
अउर की सेव सुहात न जी को।
दान दयो इनही को भलो,
अरु आन को दान न लागत नीको।
आगै फलै इन ही को दयो,
जग मै जसु अउर दयो सभ फीको।
मो ग्रहि मै तन ते मन ते,
सिर लउ धन है सभही इनही को।
(गिआन प्रबोध पा: 10)

मेरे पास जो कुछ भी है वह सब इन्हीं का है।

जुध जिते इन ही के प्रसादि,
इनही के प्रसादि सु दान करे।
इनही के प्रसादि सु बिदिआ लई
इनही क्रिपा फुन धाम भरे।
इनही के प्रसादि सु बिदिआ लई
इन ही की क्रिपा सभ सत्र मरे॥
इन ही की क्रिपा के सजे हम हैं,
नहीं मो से गरीब करोर परे॥(गिआन प्रबोध पा: 10)

गुरू जी कहने लगे, मेरे जैसे तो हजारों घूम रहे हैं लेकिन मैं तो इन्हीं की कृपा से तुम्हें दिखाई पड़ रहा हूँ। ये तो मेरा जीवन हैं -

मै गुन बंध सगल की
जीवनि मेरी जीवनि मेरे दास ॥ अंग - 1253

मेरा जीवन तो ये मेरे प्यारे ही हैं और फिर यह जो मेरा सिक्ख है, यह तो मुझे और भी अधिक प्यारा है। दरअस्ल मुझे अपने सिक्खों की की हुई सेवा अत्यन्त अच्छी लगती है। यदि कोई मेरे सिक्ख को प्रसन्न कर ले तो वह मेरी प्रसन्नता ही होती है। मेरे सिक्ख तो मेरा ही स्वरूप हैं। इस प्रकार से आप जी फुरमान करते हैं -

धारना - मेरा ही रुप है, मेरे ही बण गए जिहड़े।

गुरू दशमेश जी फुरमान करते हैं कि जो खालसा पद के गुरसिक्ख हैं वे तो मेरा ही रूप हैं और मैं उन्हीं के अन्दर निवास रखता हूँ। खालसा कौन है?

जलसा मेरो रुप है जस॥
जलसे महि हौ करौ निवास॥ सरब लोअ ग्रंथ 'चों

मुझमें, उस गुरसिक्ख में और परमात्मा में तनिक सा भी भेद तुम मत जानना क्योंकि उन्हीं के अन्दर तो मैं निवास करता हूँ -

आतम रस जिह जानही, सो है जलस देव।
प्रभ महि, मो महि, रंचक नाहन भेव।

जो मेरे गुरसिक्खों को प्यार करता है मैं उसके ऊपर बहुत प्रसन्न हो जाता हूँ। भाई बुद्धू बोला, महाराज जी! सारी संगत तो बहुत प्रसन्न हो गई है -

सभि प्रसंन होए जबि खाँइ।
एक सि्ख तबि जाचयो आइ।
तिस को नहिं अहार मैं दीना।
काचो रहै-ताँहि बचकीना।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1837

एक गुरसिक्ख को मैंने भोजन ग्रहण नहीं करवाया उसने कह दिया कि आवा कच्चा रहेगा। सच्चे पातशाह जी! उसे मैंने पलट कर यह बातें भी कह दी कि -

मैं भाखयो अैसो नहिं कोइ।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1837

संसार के अन्दर की बात तो छोड़ो पूरे ब्रह्मांड में भी कोई ऐसा नहीं है जो कि -

मैं भाखयो-अैसो नहिं कोइ।
सतिगुर बाक मिटावै जोइ॥
तुमरो वाक निफल करि दयो।
तिस को कहयो साच सभि भयो।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1837

सच्चे पातशाह! अब मैं क्या कह सकता हूँ जबकि आपका कहा हुआ नि:फल नहीं हो सकता है। वचन कभी भी नि:फल नहीं हो सकता है।

धारना - वाक गुराँ दा ना कदे निहफल होवे,
सि्खा काहतों झूठ बोलदैं।

महाराज जी! एक तरफ आपका वचन, एक तरफ संगत

की अरदास और एक तरफ वह पागल सा एक सिक्ख। मैंने उससे कहा कि ऐ सिक्ख बन्धु! तुम क्यों झूठ बोल रहे हो क्योंकि गुरू ने कह दिया है कि तुम्हारा 'आवा' पक्का निकलेगा और संगत ने भी यही अरदास की है। सच्चे पातशाह जी! वह कहने लगा, मेरी जुबान पर भी तो गुरू ही बोल रहा है। महाराज जी! कृपा करके हमें समझाएं कि इसका क्या अर्थ हुआ है? क्योंकि मैं भी इस दुविधा में पड़ गया हूँ कि एक सिक्ख, आपके वचन को बदल सकता है?

कितिक काल जबि बैठयो रहयो।
करुना करी गुरु पुन लहयो।

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1838

जब काफी समय बैठे हुए हो गए तो फिर उस समय गुरू महाराज जी कहने लगे कि भाई बुद्धू! मेरे वचन को मेरा सिक्ख तो बदल सकता है लेकिन मैं सिक्ख के वचन को नहीं बदल सकता हूँ और मैं अपने सिक्ख के वचन को कभी नि:फल भी नहीं जाने देता हूँ। आप इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

धारना - मेरी बंनी होई भगत छुडाउंदे ने,
भगताँ दी बंनही ना छुटदी।

मेरी बाँधी भगतु छडावै बाँधै भगतु न छूटै मोहि ॥
एक समै मो कउ गहि बाँधै
तउ फुनि मो पै जबाबु न होइ ॥ अंग - 1253

गुरू जी कहते हैं कि मैं अपने वचन को तो झूठा साबित करवा सकता हूँ लेकिन सिक्ख का नहीं।

श्री गुरू नानक देव जी यमुना के तट पर बैठे हुए हैं, जहाँ पर कि आजकल 'मजनू टीला' गुरुद्वारा साहिब है। उस जगह पर आप समाधिस्थ अवस्था में बैठे हैं। उस जगह के पास में ही बादशाह का हाथीखाना था, वह मर गया। ब्रह्ममुहूर्त का समय था। वह महावत ऊँची आवाज में रोने लग पड़ा।

महाराज जी कहने लगे, भाई मरदाना! शोरगुल किस चीज का है? जाओ! पता करके आओ।

जब वह पता करके आया तो उसने बताया कि महाराज जी! उनका हाथी मर गया है और वे इसलिए रोते हैं कि हम बेरोजगार हो गए हैं तथा अब हमें नौकरी से हटा दिया जाएगा।

गुरू जी बोले, भाई मरदाना! उन्हें कह कर आओ कि उनका हाथी मरा नहीं है, उसे तुम लोग उठा लो। मरदाना बोला, मेरे प्यारे भाइयो! आप लोग क्यों इतना शोर डाल रहे हो यह हाथी तो मरा ही नहीं है। वे अच्छे सयाने लोग थे यदि अनजान लोग होते तो कह देते कि यह तो मरा पड़ा है। लेकिन वे लोग पीरों-फकीरों पर श्रद्धाभाव रखने वाले थे, अत: वे लोग हाथी को उठाने लग पड़े। जब उन्होंने हाथी को उठाया तो वह उठ कर खड़ा हो गया। सारे शहर में यह बात फैल गई और बादशाह तक भी पहुँच गई। अगले दिन बादशाह आ गया, उसने गुरू साहिब के दर्शन किए और कहने लगा, पीर जी! तुमने इस मरे हुए हाथी को जिन्दा किया है?

महाराज जी बोले, मारना और जिन्दा करना तो परमात्मा के हाथ में होता है।

वह बोला, फिर इसे मार कर दिखलाओ। महाराज जी बोले, यह पहले से ही मरा हुआ है, अब यह क्या मरेगा, इतना कहने की देर थी कि हाथी तुरन्त नीचे गिर गया। वे बोले अब इसे जिन्दा करो।

महाराज जी ने कहा, अब यह जिन्दा नहीं हो सकता है। अब तो इसे परमात्मा भी जीवित नहीं कर सकता है।

बादशाह बोला, क्यों?

महाराज जी बोले, देखो! परमात्मा के मारे हुए को फकीर उठा लिया करता है लेकिन फकीर के मारे हुए को परमात्मा नहीं उठाया करता है। उदाहरण के द्वारा आपको बतलाते हैं। आप आग में से कोयले को निकाल लो, उसे तुम एक दो सैकेंड हाथ में घुमा सकते हो लेकिन जिस लोहे को आग में डालकर लाल सुर्ख कर लिया गया हो उसे आप जरा सा भी छू लो वह तुरन्त ही जला कर रख देगा। इसी प्रकार से जो साधू हुआ करते हैं वे परमात्मा के प्रेम में लीन होकर लाल हो चुके होते हैं, वे तो प्रतिक्षण उसके रंग में ही रंगे रहते हैं -

संत तुमारे तुमरे प्रीतम तिन कउ काल न खाते ॥
रंगि तुमारै लाल भए है राम नाम रसि माते ॥

अंग - 530

जिस प्रकार से लाल लोहे को हाथ नहीं लगाया जा सकता है, उसी प्रकार से परमात्मा के द्वारा की हुई बात को अभेदावस्था के सन्त बदल दिया करते हैं लेकिन उनके द्वारा की गई बात को परमात्मा नहीं बदला करता है।

एक बार एक मुल्तान का नवाब था। उसका लड़का

बीमार हो गया। उसने सारे मौलानों को पकड़ कर जेल में भेज दिया। कहने लगा, यदि मेरा लड़का मर गया तो मैं तुम सबको मार डालूँगा, इसे ठीक करो।

वे कहने लगे, हुजूर! एक हमारे साथ का व्यक्ति बाहर है, उसे पकड़ कर लाओ फिर यह ठीक हो जाएगा। वैसे वे सभी उससे घोर ईर्ष्या करते थे। नवाब ने पूछा, उसका नाम? उन्होंने बताया कि उसका नाम शमश्वतबरेज है, वह फकीर है और चतुर्थ पद में विचरण करने वाला है।

उसे पकड़ कर ले आया गया तथा जेल में बन्द कर दिया गाय। उसके बाद उसे नवाब का हुक्म सुना दिया गया कि नवाब का लड़का बीमार है। उसे स्वस्थ कर दो अन्यथा उसके साथ तुम सबको भी मार दिया जाएगा।

वह फकीर बोला, नवाब साहिब! यदि पहले ही मार दो तो ज्यादा ठीक है क्योंकि फकीर तो वैसे भी मरा हुआ ही होता है। यही कारण है कि फकीर को कोई क्या मारेगा? फकीर को समझना ही कठिन है। वह कहता है कि यह जो शरीर है यह फालतू चीज है, इसे तुम मार डालो।

नवाब के लोग चले गए उसके बाद जो अन्य मौलाना वगैरह थे उन्होंने उसके चरण पकड़ लिए कि पीर जी! आपको तो कोई रोने वाला नहीं है लेकिन हमारे तो बच्चे छोटे-छोटे हैं, इसलिए आप हमारे ऊपर कृपा करो। वह बोला मैं कृपा कर दूँगा लेकिन तुम सबने मेरे खिलाफ हो जाना है।

वे बोले, हम आपके खिलाफ कैसे हो जाएँगे?

इतने में नवाब का लड़का मर गया। उन्होंने उस लड़के को उठा कर उनके सामने रख दिया तथा हुक्म सुना दिया कि इसे जिन्दा कर दो अन्यथा तुम लोगों को अभी कत्ल करना शुरू कर देना है। वे सभी पीर जी के चरण पकड़ बैठ गए कि पीर जी! आप कृपा करो।

उन्होंने कहा, आप लोग करो यह काम? वे बोले, पीर जी! यह काम हमारे वश का नहीं है। पीर जी ने कहा, मौलाना बन्धुओ! यदि लड़का जीवित हो गया तो तुम लोग मेरे खिलाफ हो जाओगे। नवाब भी आ गया। पीर ने कहा, नवाब जी! आपका लड़का तो जीवित हो जाएगा लेकिन तुमने मेरे खिलाफ हो जाना है। जब सबने बहुत अधिक अनुनय-विनय की तो शमश्वतबरेज जी मान गए।

आप बाहर अर्थी के पास आ गए। आपने जोर से आवाज लगाई, 'ऐ लड़के खुदा के हुक्म से जिन्दा हो जाओ।' लड़का टस से मस नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद आप पुनः आए और आपने पुनः अपनी बात को दोहराया कि ऐ लड़के! खुदा के हुक्म से जीवित हो जाओ लेकिन स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

आप तीसरी बार फिर आए और अपनी बात को पुनः पूर्ववत् दोहराने लगे लेकिन कुछ नहीं हुआ। आप बोले, लो भाई यह लड़का खुदा का हुक्म तो मानता नहीं है लो फिर अब तुम्हें ये फकीर हुक्म देने लगा है।

आपने कहा, ऐ लड़के दरवेश के हुक्म से उठ कर खड़े हो जाओ।

वह लड़का उसी समय उठकर बैठ गया चहुँओर खुशी का वातावरण स्थापित हो गया। अब नवाब ने सभी लोगों को, जिन्हें कि बन्दी बनाया हुआ था, आजाद कर दिया।

सब अपने-अपने घर चले गए और कुरान शरीफ का पाठ करने लगे। अब उनके मन में आया कि वह तो खुदा के बराबर का बन बैठा है उसने तो शरह के खिलाफ बात की है। एक दिन दो दिन और पाँच-सात दिन बाद वे सारी बात को भूल गए। उसके द्वारा की गई नेकी को वे भुल गए और काजी की कोर्ट में उसके ऊपर मुकद्दमा दायर कर दिया। काजी बोला, इसने तो सबको आजाद करने में अपनी मुख्य भूमिका अदा की है?

वे बोले, उस बात को छोड़ो, आप कानून को देखो कि वह क्या कहता है?

काजी बोला, कानून तो कहता है कि इसकी जीवित की ही खाल उधेड़ दो।

अब वे उसे पकड़ कर ले आए। वह कहने लगा, मैंने कहा था न कि तुम सब मेरे खिलाफ हो जाओगे क्योंकि तुम्हें फक्कर लोगों के बारे में पता ही नहीं है और तुम लोग तो शरह की जंजीरों में कैद हो। चलो तुम लोगों ने जो करना है कर लो। अब वे लोग उसकी खाल उतारने लग पड़े लेकिन शमश्वरबेज के शरीर की खाल उतरती ही नहीं है। वे सारा जोर लगाकर बैठ गए।

आखिर में आप स्वयं ही कहने लग पड़े कि यदि तुम्हें इस चमड़े की ही जरूरत है तो लाओ हम स्वयं ही इसे उतार देते हैं। आपने स्वयं ही अपनी खाल (त्वचा) को अपने हाथों

से उतार कर काजी के पैरों में उतार कर फेंक दिया तथा बोले, काजी यह उठाओ, खाल।

अतः ये अभेदावस्था के महापुरुष चाहे वे हिन्दुओं के हों, चाहे मुसलमानों के हों, चाहे सिक्खों के हों। सांसारिक तथाकथित मर्यादाओं व तथाकथित कानून की जकड़नों से ऊपर हुआ करते हैं क्योंकि वाहिगुरू इन सब बातों से ऊपर है। जाति-पात की रचना तो मानव निर्मित है, जबकि वाहिगुरू तो प्रेम के वशीभूत ही होता है -

साचु कहौं सुन लेहुं सभै जिन प्रेम कीओ,
तिन ही प्रभ पाइओ।

इस प्रकार से गुरू जी कहने लगे, प्रेमीपुरुष! मैं अपने सिक्ख के वचन को बदलने में असमर्थ हूँ।

गुरसिखयन के बाक अचल हैं।
करौं हटावनि नहिं मम बल है।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1838

भाई बुद्धू विनय करने लगा, महाराज जी! आप कृपा करो।

गुरू जी बोले, भाई बुद्धू! तुमने बहुत बड़ी गलती की है तुमने एक गुरसिक्ख का निरादर किया है।

वह कहने लगा, महाराज अब गलती तो हो गई आप कृपा करके मेरी गलती को क्षमा करें और मुझ गरीब पर कृपा करें -

कहति भइे तैं नीकन ठानयो।
सिख अतिथि को छुधित न जानयो।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1838

गुरू जी बोले, तुमने उसकी भूख को नहीं समझा वह भूखा था और तुमने तो उल्टा उसका निरादर किया। तुमने यह बात अच्छी नहीं की। चलो तुमने भी सेवा की है हम तुम्हारी सेवा को भी निःफल नहीं जाने देंगे और सिक्ख के वचन को भी निःफल नहीं होने देंगे। जाओ हम वचन करते हैं कि तुम्हारी ईंटें निःशंक रूप से कच्ची ही रहेंगी लेकिन वे तुम्हें पक्की से भी अधिक मुनाफा देकर जाएंगी।

धारना - क्चे रहिणगे बुधू तेरे आवे
पकिआँ दे भाअ विकणगे।

गुरू जी बोले, भाई बुद्धू! हम तुम्हारी सेवा को भी व्यर्थ नहीं जाने देंगे लेकिन भविष्य में ऐसी गलती मत करना।

सिख बचन को जानहिं मीठे।
सनमुख मिलहिं, लहहिं चित ईठे।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1838

बहुरि न करहु कबहु अस बाति।
सिख अनादर है दुखदाति।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1838

सिक्ख का निरादर मुझे अच्छा नहीं लगता है -

काची ईंट पचावे जोइ।
बिकहिं मोल पाकी को सोइ।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1838

सिख को बाक न गुरु मिटायो।
अपनो कहयो प्रथम निफलायो।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पंना 1838

सिक्ख के साथ गुरू का इतना प्यार कि अपने वचन को दबा लिया और सिक्ख के वचन को पूरा किया। ऐसा नहीं है कि गुरू जी के अन्दर ताकत नहीं थी बल्कि यह आदि युगादि से ही रीति चली आई है कि अपने भक्तों की बात को परमात्मा कभी भी नीचे नहीं गिरने देता है।

जो किछु करै सोई प्रभ मानहि ओ
इ राम नाम रंगि राते ॥ अंग - 748

जो परमात्मा के रंग में रंगे हुए हैं वे जो कुछ भी कर दें, परमात्मा को उनकी बात माननी ही पड़ती है।

महाराज रणजीत सिंह फौज लेकर जा रहा है। सरदार महा सिंह ने पत्र भेजा कि महाराज! हरी सिंह नलुआ शहीद हो गया है, यदि इन विदेशी सेनाओं को इसकी भनक लग गई तो ये लाहौर के पास आकर ही दम लेंगे क्योंकि बेतहाशा लोग चढ़कर आ गए हैं। उस समय आप सेनाएँ लेकर चल पड़ते हैं, जब आगे आए तो अटक दरिया अपने ऊपरी तट को छूता हुआ बह रहा है।

बाबा बीर सिंह जी साथ में थे, महाराज ने कहा बाबा जी! इस समय परोपकार का कार्य है और पंजाब की इज्जत का सवाल है। यदि हम लोग समय पर न पहुँचे तो ये कबाइली लोग पंजाब की इज्जत कौ रौंद डालेंगे। हमारी बहू-बेटियों को ये लोग पकड़ कर ले जाएंगे और अपना गुलाम बना लेंगे। नौजवानों को ये अपने देश में ले जाकर टके-टके में बेचेंगे अतः आप इस समय कृपा करो।

उस समय बाबा जी दरिया के तट के पास आकर कहने लगे, देखो भाई अटक दरिया! हमने सुखमनी साहिब कापाठ करना है, उतनी देर तक तुम अपने प्रवाह को रोक दो। आप हाथी पर चढ़े हुए थे, दरिया के बीच में आपने

अपने हाथी को रोक लिया और सुखमनी साहिब का पाठ शुरू कर लिया। इधर आपने महाराजा को इशारा कर दिया कि तुम सेनाओं को फटाफट पार निकालो। फौजें तीव्र गति से पार होने लग पड़ीं। एक कम्पनी नास्तिक थी, वह कहने लगी कि दरिया का पानी भी कभी किसी बाबा के कहने पर रुका है? यह जल तो स्वयं ही नीचे हो गया है और इसका सेहरा यह बाबा अपने ऊपर लेता है। जब यह बाबा पानी से बाहर निकल जाएगा। उस समय हम लोग इसके अन्दर प्रवेश करेंगे। उधर से बार-बार सन्देश आ रहा है कि जल्दी जल्दी करो। इतने में एक अष्टपदी रह गई और बाबा जी ने झंडी खड़ी कर दी और इशारा कर दिया कि पार निकल जाओ, अन्यथा दरिया का बहाव पुनः जोर पकड़ लेगा। उस समय वह कम्पनी दरिया में दाखिल हुई और बाबा जी पार की दिशा की तरफ चल पड़े और जब बाबा जी पार होकर बाहर खड़े हो गए और सुखमनी साहिब के पाठ का भोग भी पड़ गया तो पुनः अटक दरिया का बहाव अपने यौवन पर पहुँच गया। उस सम्पनी के 80 लोग तीव्र जलधारा में बह गए। महाराजा रणजीत सिंह जी कहने लगे, बाबा जी! अपनी एक कम्पनी दरिया में बह गई।

बाबा जी बोले, वह कम्पनी नास्तिक थी और आप हँस कर कहने लगे कि ख्वाजा ने अपनी बलि भी लेनी थी।

अब गुरू महाराज जी कह रहे हैं कि 'जो किछु करै सोई प्रभ मानहि ओइ राम नाम रंगि राते।।' दरिया भी कभी रुका करते हैं? वैज्ञानिकों या इंजीनियरों को पूछ लो कि दरिया कैसे रुक गया? जो पानी का बहाव इतनी तीव्र गति से बह रहा था, वह एकदम नीचे कैसे हो गए? दरअस्ल जो पानी था, वह एकदम जहाँ का तहाँ ही रुक गया, उसने हुक्म मान लिया।

मूसा जी जिस समय मिश्र से ईसाई कौम को लेकर जाते हैं, तो उस समय परमात्मा ने रात्रि का समय निर्मित कर दिया। यह 3300 साल पुरानी बात है, उस समय वहाँ पर फारून बादशाह था। आकाशवाणी हुई कि आप लोग जल्दी निकल जाओ। वे सारे वहाँ से निकल गए। जिस समय आगे समुद्र के तट पर पहुँचते हैं, जिसे कि लाल सागर कहते हैं, पता चला कि पीछे से सेनाएं तीव्र गति से पीछा करती आ रही हैं, क्योंकि घुड़सवार ने बताया कि सेनाएँ तो बहुत नजदीक पहुँच चुकी हैं। मूसा जी ने उस समय प्रार्थना की कि हे अल्लाहताला! आपने हम लोगों को वहाँ से बाहर भी निकाला लेकिन हम लोग तो पुनः यहाँ पर मारे जाएँगे। आवाज आई कि समुद्र को डंडा मार कर उससे रास्ता ले लो। मूसा जी ने समुद्र को डंडा मारा और कहा कि भाई हमें रास्ता दे दो। रास्ता मिल गया और सारे यहूदी समुद्र से पार हो गया। दूसरी तरफ समुद्र में रास्ते को देखकर फारून की सारी सेनाएँ भी समुद्र में प्रवेश कर गईं, जिस समय बीचो-बीच में सेनाएँ पहुँच गई तो पानी की दोनों धाराएँ आपस में मिल गए, फलस्वरूप फारून की सारी सेनाएँ समुद्र की भेंट चढ़ गईं, उसी समय से उसे लाल सागर कहा जाता है।

इस प्रकार से उसने सेवा की और सेवा लेखे में पड़ गई लेकिन असली बात यह है कि हम लोग सेवा में स्वतः ही विघ्न डाल लेते हैं और फिर कहते हैं कि हमारा कार्य सिद्ध नहीं हुआ है। गुरू जी फुरमान करते हैं कि -

जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा ॥
अंग - 1384

यदि तुमने सेवा का फल लेना है तो किसी का दिल मत तोड़ना, सबके साथ मीठा बोलो, गुरसिक्खी को धारण करो, श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की शिक्षा के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करो। इस प्रकार से नाम स्मरण के द्वारा सारे दुखों का नाश होता है और सेवा के द्वारा लोक व परलोक के सारे सुख प्राप्त हो जाते हैं। यथा -

सा सेवा कीती सफल है जितु सतिगुर का मनु मंने ॥
जा सतिगुर का मनु मंनिआ ता पाप कसंमल भंने ॥
अंग - 314

सेवा के द्वारा सारे पाप नष्ट हो जाते हैं -

विचि दुनीआ सेव कमाईऐ ॥
ता दरगह बैसणु पाईऐ ॥
कहु नानक बाह लुडाईऐ ॥ *अंग - 26*

जिस किसी ने भी इस संसार के अन्दर सेवा की है उसका परलोक भी साथ ही साथ संवरना शुरू हो जाता है। दरअस्ल परमात्मा तो संसार में ही निवास करते है और जब हम संसार की सेवा करते हैं, गुरू की सेवा करते हैं, वह तो वाहिगुरू की ही सेवा होती है। सेवा कोई भी कर लो वह लेखे में अवश्य पड़ती है और फल भी देती है। अब समय अनुमति नहीं देता है इसलिए अब यहीं पर समाप्ति है।

श्री आनन्द साहिब, गुरु स्तुति, अरदास, हुक्मनामा।

जिन सतिगुर की आगिआ सति सति करि मानी।।

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मि. चै. ट्रस्ट

सतिनामु श्री वाहिगुरु,
धंन श्रीगुरु नानक देव जए महाराज।
डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ॥
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥
अंग - 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ॥
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥
अंग - 289

धारना - मैनूं रख लए सतिगुर जी,
घर के चेरे-घर के चेरे।

सुनहु बेनंतीआ सुआमी मेरे राम ॥
कोटि अप्राध भरे भी तेरे चेरे राम ॥
दुख हरन किरपा करन मोहन कलि कलेसह भंजना॥
सरनि तेरी रखि लेहु मेरी सरब मै निरंजना ॥
सुनत पेखत संगि सभ कै प्रभ नेरहू ते नेरे ॥
अरदासि नानक सुनि सुआमी रखि लेहु घर के चेरे ॥
अंग - 547

साधु संगत जी! अपनी चित्त वृत्तियों को एकाग्र करते हुए नेत्रों के द्वारा गुरू स्वरूप के दर्शन करो, कानों के द्वारा गुरवाणी श्रवण करो, विचार श्रवण करो तथा बुद्धि के द्वारा गुरवाणी कीर्तन की विचार करो तत्पश्चात उसे हृदय में धारण करो अर्थात गुरवाणी को मानो और फिर उसकी कमाई करो यानि कि उसे जियो। जब इस प्रकार से गुरवाणी को मनसा वाचा कर्मणा अपने जीवन में उतारोगो तो फिर उसका फल कितना होगा -

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम ॥
अंग - 546

गुरू जी कथन करते हैं कि -

सेवक सिख पूजण सभि आवहि
सभि गावहि हरि हरि उतम बानी ॥
गाविआ सुणिआ तिन का हरि थाइ पावै
जिन सतिगुर की आगिआ सति सति करि मानी ॥
अंग - 669

यह बात बहुत ही ध्यानपूर्वक समझने वाली है। गुरू के पास लाखों की संख्या में लोग आते हैं, मत्था टेकते हैं, भेंट चढ़ाते हैं, प्रसाद करवाते हैं, गुरू की वाणी गाते भी हैं और सुनते भी हैं, लेकिन सवाल यह है कि क्या गाना सुनना सत्संग में आना व बैठना आदि स्वीकार्य है या नहीं? कहीं इसके साथ कोई शर्त तो नहीं लगी हुई है? हम तो कहते हैं कि हमारा समय गुरू के द्वार पर स्वीकार्य हो जाए। दरगाह में यह लिखा जाए कि हाँ यह सत्संग में आया था और इसकी दो घड़ियां सफल हो गई हैं। सत्संग का तो फुरमान इस प्रकार से है -

कबीर एक घड़ी आधी घरी आधी हूं ते आध ॥
भगतन सेती गोसटे जो कीने सो लाभ ॥
अंग - 1377

चाहे सवा छः मिनट भी सत्संग की है फिर भी उसका लाभ है। यहाँ तक भी कहते हैं कि चाहे एक आवाज ही कान में पड़ गई है और यदि उसने उसे मान लिया तो उसका भी बेशुमार लाभ है। पुराने समय में जिस समय व्यक्ति की बुद्धि इतनी तर्कशील नहीं थी, महापुरुष बात को समझाने के लिए एक साखी सुनाया करते थे कि एक बार एक कोई व्यक्ति किसी शहर में परलोक सिधार जाने वाला था। उस समय यानि कि मरने से कुछ समय पहले अपनी धर्मपत्नी को कुछ बातें समझाने लगा। दरअस्ल उस समय उसके बेटे की आयु अभी बहुत कम थी, वह कहने लगा कि भाग्यवान! देखो! हम लोगों को कोई विशेष आजीविका का तो ज्ञान है नहीं और न ही मेरे पिता जी को था और दादा या पड़दादा को भी कोई आजीविका आती नहीं थी। इसलिए हम लोगों का तो खानदानी पेशा यही है कि हम लोगों ने कुछ धनवान लोगों के ऊपर निगाह रखनी है कि उनका माल कहाँ पर

पड़ा है या उन्होंने कौन सी चीज बेची है अर्थात उनकी आर्थिक गतिविधियों पर पूरा ध्यान रखना है और मौका पाकर सेंध लगाकर या ताला तोड़कर उसे निकाल लेना है अर्थात चोरी करना ही अपना खानदानी पेशा है। अपना बच्चा अभी छोटा है लेकिन मैं तुम लोगों के लिए धन का प्रबन्ध पूरा कर चला हूँ कि तुम लोग आराम से जीवन यापन करते रहना। धन को दबाकर रखा हुआ है तुम लोग धीरे-धीरे निकाल कर खर्च करते रहना यानि कि अपना जीवन निर्वाह करते रहना। ख्याल रखना कि किसी को भेद की बाद मत बताना। जब अपना बेटा 18 वर्ष का हो जाएगा तो उस समय उसे मेरी तीन बातें समझा देना। एक बात तो यही है कि चोरी किस प्रकार से करनी है यानि कि जो तरीके मैंने तुम्हें बताए हैं वे सब उसे समझा देना। दूसरी बात यह है कि यह चाहे मर भले ही जाए लेकिन सत्संग में न चला जाए क्योंकि वे लोग हमारे पक्के दुश्मन हैं और वे हमारे धन्धे की हमेशा निन्दा करते रहते हैं। वे तो कहते हैं कि -

चोर की हामा भरे न कोइ ॥
चोरु कीआ चंगा किउ होइ ॥ *अंग - 662*

जो व्यक्ति चोरी करता है, वह सेंध लगाकर ही करता है। चोरी एक प्रकार की नहीं हुआ करती है बल्कि चोरी तो हजारों प्रकार की होती है। आँखों की चोरी है बेगाने रूप को देखना, कानों की चोरी है **over hearing** करना, रसना (जिह्वा) की चोरी है कि लोगों के शव्दों को चुरा कर और उन्हें अपने बनाकर सुनाना तथा वाह-वाह लेनी, अपनी प्रशंसा करवानी। यानि कि ख्याल किसी के, शव्द किसी के लेकिन अपने मुख से सुनाने। यह ख्यालों की चोरी कहलाती है। इसी प्रकार से किसी की मेहनत की कमाई को चुरा लेना।

अतः वह व्यक्ति अपनी घरवाली को समझा रहा है कि यह धन चुराना ही अपना मुख्य पेशा है और ये सारी बातें उसे समझा देना। यह भी ख्याल करना कि उसका पालन पोषण खूब अच्छे ढंग से करना ताकि वह शारीरिक रूप से बलिष्ठ हो और पुलिस की पिटाई को आसानी से सहन कर जाए। तीसरी बात यह है कि चाहे जो भी हो जाए चाहे मर ही क्यों न जाए लेकिन अपने पेशे के बारे में किसी को भी न बताए यानि कि अपना भेद किसी को न बताए।

अब लड़का 12 वर्ष का हो गया। वह कहने लगा, माता जी! पिता जी को गए हुए नौ वर्ष हो गए हैं और मैं भी अब 12 वर्ष का हो गया हूँ, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी अब बच्चों वाली मजदूरी कर लेता हूँ, किसी के पशुओं को चराने लग जाता हूँ या फिर कोई और छोटी मोटी मजदूरी कर लेता हूँ। माँ कहने लगी, बेटा! तुम अभी बच्चे हो। जिस दिन तुम अट्ठारह वर्ष के हो जाओगे फिर मैं तुमसे कुछ बातें करूँगी क्योंकि तुम्हारे पिता जी ने मुझे हिदायत दी हुई है कि जब तुम अट्ठारह वर्ष के हो जाओगे तब मैं, तुम्हें उन बातों को बतलाऊँ।

अब वह अट्ठारह वर्ष का हो गया। कहने लगा, माता जी! अब तो मेरा अट्ठारहवां जन्न दिन भी मना लिया गया है और मैं उन्नीसवें वर्ष में प्रवेश कर चुका हूँ, इसलिए अब आप कृप्या मुझे उन बातों के बारे में बताओ जो कि आपने मुझे अट्ठारह वर्ष की आयु के बाद ही बतानी थी। माता बोली, बेटा! पहले तुम यह प्रण करो कि तुम उन वचनों पर पूरा पहरा दोगे।

वह बोला ठीक है, मैं यह वचन देता हूँ और इन वचनों का पालन करने का प्रण करता हूँ। माता बोली, ठीक है बेटा! तुम भले ही मर जाना लेकिन इन वचनों से पीछे मत हटना। पहली बात तो यह है कि अपना पेशा है - चोरी करना। तुम्हारे पिता ने यह तरीका बताया था, इसके अनुसार चोरी करनी है, तालों को इस प्रकार से तोड़ना है, सेंध इस प्रकार से लगानी है, सोते हुए लोगों पर दवाई फेंक कर उन्हें इस प्रकार से बेहोश कर दिया जाता है। उसके बाद निश्चित होकर चोरी कर ली जाती है। तुम्हारा पिता कभी भी नहीं फँसा था और प्रत्येक बार अच्छा माल लाता था, जिसके फलस्वरूप हम लोग आरामपूर्वक जीवन यापन करते थे। दूसरी बात यह है कि यदि तुम कहीं फँस जाओ तो फिर चाहे मर क्यों न जाओ, तुमने अपने जुर्म को कभी भी स्वीकार नहीं करना है। वह बोला, माता जी! मुझे यह सब स्वीकार्य है।

तीसरी और सबसे जरूरी बात यह है कि तुमने कभी भी भूल कर भी, सत्संग में नहीं जाना है क्योंकि वे लोग अपने एक नम्बर के दुश्मन हैं जो कि हमारी नित्य प्रतिदिन निन्दा करते हैं। हम लोग अपनी जान को कितनी जोखिम में डालकर धनोपार्जन करते हैं लेकिन वे लोग हमारी निन्दा करते हैं। अतः तुमने वहाँ पर नहीं जाना है। माता ने, पिता की हिदायत के अनुसार तीन वचन अपने पुत्र को दे दिए। समय गुजरता गया और वह युवक चोरियाँ करता रहा।

एक बार उसने राजा के घर चोरी कर ली। सारी पुलिस

चौकस हो गई, उसने घेराबन्दी कर दी और चारों तरफ नाके लगा दिए। यह माल लेकर जा रहा था और इसे एक धर्मशाला के आगे से निकलना पड़ा। सारी जिन्दगी किसी धर्मशाला के आगे से नहीं निकला था। अब वह जैसे ही उधर से गुजरा तो उसे किसी महात्मा के बोल सुनाई दिए। इसने कहा चलो इधर से ही निकल जाता हूँ क्योंकि जगह-जगह पर पुलिस खड़ी है और यह रास्ता खुला हुआ है। हाँ, मेरे कानों में सत्संग की आवाज न पड़ जाए। इसलिए मैं अपने कानों में अंगुलियाँ दे लेता हूँ। जब पास में चला गया तो उसके पैर में कांटा लग गया। अब यह लंगड़ाता हुआ चल रहा है लेकिन जल्दी बहुत थी कि शीघ्रता से निकल जाऊँ। इसने घुटने पर अपना दूसरा पैर रख लिया और काँटा निकालने लग पड़ा। इतने में धर्मशाला की एक बात कान में पड़ गई कि देवताओँ की परछाई नहीं होती है, वे तो विशुद्ध प्रकाश ही होते हैं। उसने विचार कर ली कि यह बात मेरे कान में पड़ गई है, फिर सोचने लग पड़ा कि मुझे इस बात से क्या मतलब है? हाँ और तो कोई बात मेरे कान में नहीं पड़ी है। आखिर घर पहुँच गया।

अब राजा के दरबार में बहुत विचार होने लगी कि चोरी का पता नहीं चल पा रहा है। उन दिनों में सी.आई.डी. के कार्य में जो औरतें कार्यरत होती थीं, उन्हें फफाकुट्टनियाँ कहा जाता था। एक औरत ने ड्यूटी सम्भाल ली कि मैं चोरी का पता लगाती हूँ। वह एक-एक घर में घूमने लग पड़ी। उसने पूरी तरह से निर्णय कर लिया इस घर के सदस्य कोई कार्य नहीं करते हैं। आदमी सारा दिन घूमता रहता है। वह भी कोई काम तो करता नहीं है। उसने राजा को सूचना दे दी कि यही व्यक्ति चोर हो सकता है। फलस्वरूप उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उसके बाद उसे बहुत अधिक टार्चर किया गया लेकिन वह माना ही नहीं। आखिर राजा ने उस सी.आई.डी. वाली औरत को बुलाया कि कहीं उसने गलत सूचना तो नहीं दे दी और मेरे हुक्म से उस पर बहुत अधिक अत्याचार भी ढाए जा चुके हैं, कहीं मैं ही गुनाहगार न बन जाऊँ क्योंकि सच्चे व्यक्ति की यदि पिटाई कर दी गई तो फिर तो मैं ही गुनाहगार हो जाऊँगा यदि ऐसी बात निकली तो फिर मैं तुम्हें भी बहुत सजा दूँगा। उस समय वह कहने लग, महारज जी! मेरी ऐक माँग है उसे पूरी करवा दो। मेरी माँग यह है कि मेरे लिए एक शेर बनवा दो जिसे पहिए लगे हुए हों और जो देखने में इस प्रकार से महसूस हो कि वह चल रहा है, उसके ऊपर मैं बैठी हुई होऊँ और मेरे दो और भुजाएं लगवा दो। इसके साथ ही एक मशाल जला कर फिट करवा दो तथा जहाँ पर इसे रखा हुआ है, उस जेल का ताला खुलवा दो एवं लिखने वालों को मेरे साथ भेज दो जो कि गुप्त तरीके से बैठ कर लिखते रहें। राजाज्ञा हो गई और उसका अक्षरशः पालन हो गया। अब वह शेर को लेकर जा रही है, उसने उस शेर पर या अपने ऊपर प्रकाश का प्रबन्ध इस प्रकार से करवा रखा है जिससे कि यह पता ही नहीं चल पा रहा है कि वह शेर पहियों पर आ रहा है या फिर पैरों पर चलता हुआ आ रहा है। आखिर में वह जेल के दरवाजे के पास गई। दरवाजा अपने आप खुल गया (जो कि पहले से ही ताला रहित यानि कि खुला हुआ था) वहाँ पर वह कहने लग पड़ी कि इस राजा ने मेरे भक्त को यूँ ही नाजायज बन्द कर रखा है मैं इसे और इसके राजा को गरक कर दूँगी। अब उस चोर के मन में बहुत अधिक श्रद्धा हो गई कि यहाँ तो देवी प्रकट हो गई है। फलस्वरूप उसने देवी को मत्था टेका। वह कहने लगी, बेटा! मैंने इस राजा का राजभाग गरक कर देना हो। इसने तुम्हारे ऊपर अत्यधिक अत्याचार किया है लेकिन तुम एक बात बताओ कि क्या चोरी तुमने की थी? जिस समय यह बताने लगा कि माता! तुम तो जानती ही हो कि, इसके आगे वह बोलते बोलते रुक सा गया क्योंकि एकाएक उसकी निगाह उसकी परछाई पर पड़ गई। उसने सत्संग में सुना था कि देवते की तो परछाई होती ही नहीं है। उसके मन में एकदम ख्याल आ गया कि यह तो मेरे साथ कोई छल, कपट या धोखा हो रहा है। उसने तुरन्त ही अपनी बात को बदल लिया। अब वह बोला कि माता! तुम तो जानती ही हो कि यदि मैंने चोरी की होती तो वह तुमसे कैसे छिपाई जा सकती थी क्योंकि तुम तो भूत, वर्तमान व भविष्य सब कुछ ही जानती हो। इतना कहने की देर थी कि वह अत्यन्त भयग्रस्त हो गई कि यह तो मानता ही नहीं है। उसके हाथ से मशाल भी गिर गई और स्वयं शेर से भी नीचे उतर गई और उसे गिरफ्तार कर लिया गया तथा उसे सख्त सजा दी गई। इधर इस चोर को बाइज्जत बरी कर दिया गया।

चोर वहाँ से छूट कर घर आ गया। सबसे पहले तो उसने अपनी माँ के साथ झगड़ा किया कि माँ! तुमने ही मुझे उल्टी शिक्षा दी है। यदि तुम मुझे चोरी करने की जगह पर किसी अच्छी आजीविका पर लगा देती तो मुझे ये भयानक

समय न देखना पड़ता। दूसरी बात यह है कि मैंने सत्संग की एक पंक्ति ही सुनी थी, उसकी वजह से मेरा यहाँ से छुटकारा हो गया अन्यथा मुझे फाँसी पर चढ़ा दिया जाना था। यदि मुझे सत्संग के माध्यम से सुनी हुई उस बात का पता न होता कि देवता की परछाई नहीं होती है तो मैंने भावुक होकर सच्ची बात बोल देनी थी यानि कि मैंने कह देना था कि हाँ यह चोरी मैंने ही की है। अतः केवल एक बात ने ही इसे बचा लिया।

अजामल को केवल एक बात ही कही गई थी कि तुम अपने पुत्र का नाम नारायण रख लेना और नारायण-नारायण कहते रहना। इस प्रकार से जब उसका अन्तिम समय आया तो -

अंतकाल जमदूत वेखि पुत नराइणु बोलै छहिआ।
भाई गुरदास जी, वार 10/20

भयग्रस्त होकर उसने अपने पुत्र को आवाज लगाई लेकिन कहते-कहते ध्यान वास्तविक नारायण की तरफ चला गया। पूर्ण महात्मा ने बतला दिया था कि उसका नाम नारायण भी है -

अजामल प्रीति पुत्र प्रति कीनी करि नाराइण बोलारे॥
मेरे ठाकुर कै मनि भाइ भावनी
जमकंकर मारि बिदारे ॥ अंग - 981

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के अन्दर बहुत सारी मिसालें मिलती हैं। अजामल ने केवल एक बार ही कहा और उसका उद्धार हो गया। एक वचन ही उसने माना था -

संतहु सागरु पारि उतरीऐ ॥
जे को बचनु कमावै संतन का
सो गुर परसादी तरीऐ॥ अंग - 747

यदि वचन को कमा ले तो उसका उद्धार हो जाया करता है। इस प्रकार से -

कबीर एक घड़ी आधी घरी आधी हूं ते आध ॥
अंग - 1377

यदि वह छः मिनट भी वचन सुन ले तो भी उसका उद्धार हो जाता है यानि कि सन्तजनों के वचन सुनने से तो व्यक्ति का उद्धार होता ही है न कि उसकी कोई हानि ही होती है।

यहाँ पर यह बात भी सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के भाग्य में परमात्मा ने सत्संग को लिखा ही नहीं होता है क्योंकि उसके पुण्य कर्म अभी जागृत नहीं हुए होते हैं, फलस्वरूप वह सत्संग में आ ही नहीं पाता है। गुरू जी का इस प्रकार से फुरमान है -

धारना - सतिसंग ना मिलदा भाग बिनाँ।
संगत बिन मैल भरीजै जी।

बिनु भागा सतसंगु न लभै
बिनु संगति मैलु भरीजै जीउ ॥ अंग - 95

मन के अन्दर संस्कारों की मलिनता, देखने से, सुनने से व पढ़ने से उत्पन्न होती है। वैसे तो पहले की ही मैल बहुत होती है क्योंकि सत्संग के अभाव में अन्तःकरण मैल से भर जाता है। दूसरी तरफ यदि सत्संग की प्राप्ति हो जाए तो फिर पापों की मैल समाप्त होना शुरू हो जाती है। यथा -

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा ॥
अंग - 642

हरियश श्रवण करना तथा साधुओं की संगत करना समस्त कर्मों से शिरोमणि कर्म है -

कहु नानक तिसु भइओ परापति
जिसु पुरब लिखे का लहना ॥ अंग - 642

लेकिन यह सब उसी को प्राप्त हो पाता है जिसके पूर्वजन्म के कर्म जागृत हो जाएँ और वे उसे फल देने के लिए तैयार हो जाएँ। उन्हीं को सत्संग में आने की प्रेरणा होती है। सत्संग कहते किसे हैं? सत्संग, वैसे ही किन्हीं व्यक्तियों के समूह को नहीं कहा जाता है, जहाँ पर कि इधर उधर की बातें करके समय को व्यतीत किया जाए। गुरू जी कहते हैं कि जहाँ पर केवल नाम की बात होती है या नाम जपने वालों की बात होती है, उसे ही सत्संग कहा जाता है। यथा -

सतसंगति कैसी जाणीऐ ॥
जिथै एको नामु वखाणीऐ ॥
एको नामु हुकमु है
नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ॥ अंग - 72

अतः मैं यह विनती कर रहा था कि गुरवाणी पढ़ना या कीर्तन श्रवण करना, किन लोगों का लेखे में पड़ता है? दरअस्ल इसका फल बहुत अधिक है -

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम ॥
अंग - 546

जो ध्यानपूर्वक सुनता और गाता है उसे करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है। अब सवाल उत्पन्न होता है कि कौन से भाग्यशाली हैं, जिन्हें यह फल प्राप्त हो जाएगा? क्या सबको मिल जाएगा? महाराज जी ने यहाँ पर शर्त रख दी।

उस शर्त को जो पूरा कर देगा उसे यह फल मिलेगा -

सेवक सिख पूजण सभि आवहि
सभि गावहि हरि हरि उतम बानी ॥ अंग - 669

अब गुरू के पास आते तो सभी हैं और गाते भी सभी हैं, इस श्रेणी में तो हम सभी आ जाते हैं क्योंकि हम आ भी गए हैं और गाते भी हैं लेकिन अगली बात यह है कि -

गाविआ सुणिआ तिन का हरि थाइ पावै
जिन सतिगुर की आगिआ सति सति करि मानी ॥
अंग - 669

यहाँ पर यह शर्त जुड़ गई है। गुरू जी फुरमान करते हैं कि गाना व सुनना उन्हीं का लेखे में पड़ता है 'जिन सतिगुर की आगिआ सति सति कर मानी।।' गुरू की आज्ञा को जिसने सत्य करके मान लिया है और अपने ह्रदय में धारण कर लिया है उसी का गाना व सुनना लेखे में पड़ता है। अतः हम सबने यह विनती की थी कि हे प्रभु जी! हमें तो अपने घर के गुलाम बना कर रख लो। गुलाम कौन होता है? गुलाम वह होता है जो बिका हुआ होता है। जो अभी बिका हुआ नहीं है बल्कि अपनी मर्जी करता है तो वह गुलाम नहीं हुआ करता है। गुलाम का अपनी जिन्दगी पर कोई अधिकार नहीं हुआ करता है, यानि कि खाना, पीना, काम करना, पहनना आदि सबके बारे में उसकी कोई मर्जी नहीं होती है। यहाँ तक कि उसका, अपने शरीर पर भी कोई अधिकार नहीं होता है क्योंकि उसे तो मोल खरीद कर प्राप्त किया गया होता है। अब कोई व्यक्ति किसी पशु को ही मोल खरीद लाए तो पशु का क्या अधिकार रह जाता है।

मैंने यू.पी. के अन्दर देखा है कि जब किसी के घर कोई खुशी का अवसर आता था तो उनका सारा भाईचारा एकत्र होकर उसे कहता कि यह तुम्हारा बैल बहुत पला हुआ है। इसलिए हम लोग इसका माँस खाएँगे। वे लोग उसे मिलकर काट लेते और उसका माँस खा जाते। अब उस बैल का कोई अधिकार तो था नहीं। वह यह नहीं कह सकता था कि तुम लोग मुझे क्यों मार रहे हो? मैं तो प्रतिदिन तुम्हारा हल चलाता हूँ, दौड़-दौड़ कर तुम्हारे खेत को जोतता हूँ और तुम लोग मुझे मारने लगे हो? वह नहीं बोल सकता है क्योंकि उसे मोल खरीद लिया है।

अतः महाराज जी कहते हैं कि यदि तुमने गुलाम बनना है तो -

गोला मुल खरीदु कारे जोवणा।
ना तिसु भुख न नीद ना खाणा सोवणा।
भाई गुरदास जी, वार 3/18

चार चीजों पर से तुम्हारा अधिकार छिन जाएगा। खाना, पीना, भूख व नींद इन चार चीजों पर से गुलाम का अधिकार समाप्त हो जाता है। इस प्रकार गुरू जी फुरमान करते हैं कि यदि तुमने गुलाम बनना है -

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै ॥
गुर की आगिआ मन महि सहै ॥ अंग - 286

जो गुरू घर में आकर रहने लग जाए वह गुरू का बन जाता है। अब चाहे अपने घर में रहते हुए ही गुरू के बन जाओ और चाहे डेरों में आकर गुरू के बन जाओ, इस बात का कोई फर्क नहीं है। बस गुरू की आज्ञा का पालन करो। गुरू की आज्ञा चाहे कड़वी है, चाहे रुखी है, चाहे अपने मन के विपरीत है, बस उसे सहन करना ही पड़ेगा। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की आज्ञा हमें माननी ही पड़ेगी। यदि हमने गुरू के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना है। गुरू जी कहते हैं कि जब तक तुम अपने आप को बेचते नहीं हो तब तक तेरा और मेरा सम्बन्ध बनेगा नहीं।

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै ॥
गुर की आगिआ मन महि सहै ॥
आपस कउ करि कछु न जनावै ॥
हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै ॥
मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिसु सेवक के कारज रासि ॥ अंग - 286

चाहे अपने पास कितनी भी बड़ी पदवी क्यों न हो, अपने आपको यह जताने की कोशिश न करे कि मैं भी कुछ हूँ।

श्री गुरू अमरदास जी जब एक खूँटे के साथ ठोकर खाकर गिर पड़े तो उस समय पास में ही रहने वाली जुलाहे की स्त्री ने कुछ अपशब्द आपको कहे थे। जब उसके पतिदेव ने पूछा कि भाग्यवान कौन है? कहीं कोई चोर तो नहीं है? वह बोली चोर नहीं है, यह तो अमरू (श्री गुरू अमरदास जी) जिसे कि घर में रहने की जगह नहीं है, जिसकी कोई इज्जत नहीं है, वह अपने समधी के यहाँ रोटी के टुकड़ों पर अपना जीवन काट रहा है, यह बेघर व लाचार है, जिसे कहीं से कोई सहारा नहीं मिला है। इसे न तो दिन में चैन है और न ही रात में चैन है, बस यह तो अपने समधी के घर मेहनत करके रोटी खाता रहता है।

गुरू अमरदास जी बोले, ऐ पगली! जिसका निवास गुरू के घर में हो वह बेघर कैसे हो सकता है? जिसने गुरू का आश्रय लिया हो वह आश्रयहीन कैसे हो सकता है? इतने वचन कह कर आप वहाँ से चल पड़ते हैं और आपने पानी वाली गागर उठाकर अपने सिर पर रख ली लेकिन दूसरी तरफ हुआ यह कि वह जुलाही पागल हो गई क्योंकि (गुरू) अमरदास जी के मुख से वचन निकल गया था। पूर्ण पुरुष का वचन तो अमोघ बाण की भांति होता है। अब वह जुलाही तो अपने ही कपड़े फाड़ने लग पड़ी। हाथ, पैरों को दाँतों से काटने लग पड़ी। वह जुलाहा बेचारा डर गया। उसने लोगों को बुलाया और उसके हाथ, पैर बाँध दिए। जब सूर्योदय हुआ तो वे महाराज जी के पास ले गए। महाराज जी बोले, क्या बात हुई?

उन्होंने बताया कि महाराज जी! बाबा अमरदास जी हमारे बुनकर के पास से, जिस समय पानी की गागर लिए गुजर रहे थे उस समय वे ठोकर खाकर गिर गए। इसने कुछ अपशब्द बोल दिए, उधर बाबा जी ने इसे पगली कह दिया।

महाराज जी कहने लगे, बाबा अमरदास जी को बुलाओ। आप हाजिर हो गए। गले में हुजूरिया डाला हुआ है, हाथ जोड़े हुए हैं। नेत्र चरणों पर टिके हुए हैं और आप ऊपर की तरफ नहीं देख रहे हैं।

महाराज जी कहने लगे, बाबा अमरदास जी! क्या बात हुई थी, हमें सारी वार्ता बताओ।

आप जवाब देते हुए कहने लगे महाराज जी! आप तो अन्तर्यामी हो, घट-घट में व्याप्त हो, आप सब कुछ जानते हो, यदि मैं कोई बात बताने लग पड़ा तो कुछ कम या अधिक हो सकती है, जबकि आप तो सर्वज्ञ हो। आप गुरू को हाजिर नाजर समझते थे और स्वयं को कुछ भी नहीं जानते थे।

जुलाहे को पूछा कि तुम बताओ इसने ये बातें कहीं थीं?

आप जलाल में आ गए। भद्रपुरुषो! इतना बड़ा सेवक सम्मान रहित कैसे हो सकता है? आश्रयविहीन कैसे हो सकता है? बेघर कैसे हो सकता है? यह तो सम्मान रहित लोगों को सम्मान देने वाला है। आश्रयविहीनों को आश्रय देने वाला है, सबका उद्धार करने वाला है, लोगों को आजीविका देने वाला यह स्वयं है, काल कुंजी इसके हाथ में है। इसे सम्मान रहित कौन कहता है?

अब बाबा अमरदास जी के अन्दर अहंभाव तो पूर्णतः समाप्त हो चुका था, यदि उनके अन्दर अहंभाव होता तो आपने कहना था कि महाराज जी! इसने ऐसे कहा तो मैंने यह कह दिया। अब उनके अन्दर की मैं तो पूर्णतः मर चुकी थी।

अतः महाराज जी कहने लगे कि यदि तुमने गुरू के घर में रहना है तो तुम्हारी जो मैं है, यह मर जानी चाहिए, तभी तुम्हारा रूहानी कार्य सफल हो पाएगा। इसलिए तुम यह पाठ अच्छी तरह से याद कर लो।

धारना - मन वेच दे गुराँ नूं आपणा,
कारज तेरे रास होणगे।

मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिसु सेवक के कारज रासि ॥

जो मन को अपने पास रखता है और गुरू के साथ सौदेबाजी करता है तो उसके समस्त कार्य सफल नहीं हो पाएँगे क्योंकि उसने शर्त को पूरा नहीं किया -

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस ॥
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि ॥

अंग - 1102

जो आरक्षण के साथ गुरू घर में आता है यानि कि कुछ मानता है और कुछ नहीं मानता है तो उसका सम्पर्क गुरू के साथ नहीं जुड़ पाया करता है क्योंकि वह अपनी मति को सुरक्षित रखता है। जब तक अपनी मति जीवित है, तब तक गुरू की मति उसका स्थान कैसे ले सकती है?

वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ॥

अंग - 474

अब एक बर्तन किसी चीज के साथ भरा पड़ा है तो दूसरी वस्तु उसमें तभी भरी जा सकती है, जबकि पहली वाली को उसमें से पहले निकाल कर बर्तन को खाली कर दें। इसी प्रकार से जब तक व्यक्ति के मन में उसकी अपनी मति कार्य करती है, तब तक उसके अन्दर गुरू की मति नहीं आ सकती है। फलस्वरूप उसका गुरू के साथ सम्पर्क हो ही नहीं पाता है।

एक साखी के माध्यम से यह बात समझ में आ जाएगी कि यह क्या बात कही जा रही है। जहाँ तक अध्यात्मिक इतिहास की बात है तो उसमें राजा जनक की बहुत सारी बातें आती हैं। वे बातें इसीलिए आती हैं क्योंकि वह केवल

साधू नहीं था, वनों में नहीं रहता था, पर्वतों की गुफाओं में नहीं रहता था, वह केवल गृहस्थी भी नहीं था बल्कि वह एक शासक था, राजभाग का मालिक था। एक राजभाग के मालिक को राज्य का कार्यभार सम्भालते हुए सत्य की प्राप्ति हो गई, फलस्वरूप उसका जीवन संसार को प्रेरणादायक व प्रकाश प्रदान करने वाला है।

राजा जनक की सभा में विगत आठ वर्ष से सारे भारतवर्ष के ऋषि, मुनि, पण्डित, वेद ज्ञाता, वेद वक्ता तथा वेद श्रोता यानि कि सारे ही एकत्र हुए थे। दरअस्ल एक मसला यह उत्पन्न हो गया था कि राजा एक सवाल पूछता था कि यह सच्चा कि वह सच्चा? इसका जवाब कोई भी नहीं दे पा रहा था। राजा कहता था कि मैं तुम लोगों की सेवा करूँगा पारिवारिक खर्च हेतु धन तुम लोगों के घर भिजवाऊँगा लेकिन तुम लोग मेरे सवाल का जवाब दिए बिना यहाँ से नहीं जा सकते हो। जो भी कहता था कि मैं जवाब दे देता हूँ तो उसे यह शर्त साइन करनी पड़ती थी कि जब तक सन्तोषजनक उत्तर नहीं दूँगा तब तक मैं घर नहीं जाऊंगा। खर्च उसे मिलता रहता था परिवार के लिए भी सारा खर्च भिजवाया जाता था, बस उसे घर नहीं जाने दिया जाता था।

उस समय एक बच्चा अपने साथियों के साथ खेलता है। बच्चे कहने लगे इसे कुछ मत कहना क्योंकि इसका बेचारे का बाप नहीं है। इसका नाना बहुत गुस्से वाला है, वह हमें मारेगा।

इसे पता चला कि मेरा पिता और है तथा नाना और है। दरअस्ल वह अपनी माँ की तरह से ही अपने नाना जी को ही पिता जी कहा करता था। आम घरों में भी यह रिवाज होता है।

इस प्रकार से वह जब अपनी माँ के पास आया तो उसने पूछा, माता जी! मुझे यह बताओ कि क्या मेरा पिता कोई और है? यह तो तुमने बहुत बुरा कार्य किया है जो कि मुझे यह नहीं बताया कि मेरा पिता कौन है -

वह बोली, बेटा! तुम तो मेरी ही नकल करके मेरे पिता को ही पिता कहते रहते थे।

उसने कहा चलो ठीक है लेकिन मुझे अब तो बताओ कि मेरा पिता कहाँ पर है?

माता ने बताया कि मिथलापुरी में, जो कि राजा जनक की राजधानी उड़ीसा में है, वहाँ पर तुम्हारा पिता है। आठ वर्ष से वह गया हुआ है, राजा का एक सवाल है कि 'यह सच्चा या वह सच्चा?' इस सवाल का जवाब, भारतवर्ष का कोई भी ऋषि मुनि या विद्वान नहीं दे सका है। राजा यह कहता है कि जब तक मेरे सवाल का जवाब नहीं दोगे तब तक मैं घर नहीं जाने दूँगा। वैसे तो सब सुखों के अन्दर है और सबके परिवारों को भी खर्चा प्राप्त हो रहा है, लेकिन तुम्हारा पिता घर नहीं आ सकता है, जब तक कि उस सवाल का सन्तोषजनक जवाब नहीं मिल पाता है।

आठ साल से भारतवर्ष के सारे ऋषि मुनि वहीं पर हैं।

वह बोला, माँ! मेरे लिए पालकी तैयार करवाओ, मैं जाता हूँ। पालकी तैयार हो गई और वह पालकी में बैठकर राजा जनक की राजधानी में पहुँच गया। ऐसी पाँच सात बातें उसने कीं कि वह राजा तक एकदम पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने राजा को कहा, राजन! मैं तुम्हारे सवाल का जवाब देने आया हूँ। तुम सभा बुलाओ। राजा ने सभा लगा ली, समय निर्धारित हो गया। सारे ऋषि मुनि बहुत खुश हैं कि आज कोई आ गया है जो कि राजा के सवाल का जवाब देगा। चलो हम लोग नहीं दे पाए लेकिन अब लगता है कि हमारा छुटकारा हो जाएगा क्योंकि हम लोग तो आठ साल से इस कच्ची जेल में बैठे हुए हैं।

जब सभा लग गई और यह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा क्योंकि सिहंद्वार से आठ-दस सीढ़ियाँ चढ़कर ही अदालत थी। वे सब देख रहे हैं कि कौन आ रहा है। सबसे पहले इसका सिर दिखाई पड़ा, बदसूरत शक्ल देखी, उसकी आँखें किसी तरफ देखती हैं, मुँह किसी तरफ है, कन्धे किसी तरफ हैं, फिर सारा शरीर ही दिखाई पड़ा और वह हिलते हुए चल रहा है। उसे देख कर वहाँ पर मौजूद सभा के सारे सदस्य हँसने लग पड़े और जिस प्रकार से मजाक किया जाता है उसी प्रकार से हँसते हुए वे लोग कहने लगे कि यह देगा सवाल का जवाब? उन्हें देखकर यह भी हँसने लग पड़ा।

सारे कहने लगे, राजन! देखो! कितना गुस्ताख बच्चा है, इसने न ही ऋषियों-मुनियों का ख्याल किया और न ही बुजुर्गों का ख्याल किया, बस यूँ ही हँसने लग पड़ा है।

राजा बोला, ऋषि कुमार! ये लोग एतराज कर रहे हैं?

वह बोला, मैंने तो इन्हीं की बात का जवाब दिया है जिसे कि ये समझ नहीं सके हैं, मैंने गुप्त तरीके से जवाब दिया है और अब मैंने आपके सवाल का जवाब देना है। जहाँ तक इनकी बात है तो इनमें से तो कोई भी आत्मदर्शी नहीं है। ये सब तो चर्मदर्शी हैं। चर्मदर्शी उसे कहा जाता है जो

कि चमड़े की परख करता है और आत्मदर्शी उसे कहते हैं जो कि इस शरीर में आत्मा को देखता है दोनों का यही अन्तर होता है।

हम सब लोग भी चर्मदृष्टि वाले ही हैं, हम तो केवल व्यक्ति को ही देखते हैं कि यह सुन्दर नयन-नक्श वाला है। हम कभी यह तो देखते ही नहीं हैं कि इसकी आत्मा में क्या है? वह कहने लगा राजन्! यह जो मेरा शरीर है इसे मैंने तो टेढ़ा-मेढ़ा नहीं किया है, बल्कि मुझे तो परमात्मा की तरफ से ही यह इस प्रकार का प्राप्त हुआ है। मेरा शरीर आठ जगह से टेढ़ा-मेढ़ा है लेकिन मेरी आत्मा तो बिल्कुल सीधी है। उसमें तो कोई भी बल या मोड़ नहीं पड़ता है। यदि कोई गन्ना टेढ़ा-मेढ़ा हो तो क्या उसके रस में भी कोई टेढ़ापन होता है? अत: ये सब चर्मदृष्टि वाले हैं यानि के चमड़े का व्यापारी हैं। ये आपके सवाल का जवाब क्या दे पाएंगे? अब वे सभी ऋषि-मुनि व साधुजन शर्मिन्दा हो गए और उन्होंने अपनी गर्दनें झुका लीं। इस समय उनका गुस्सा भी रफूचक्कर हो गया क्योंकि वे जान गए कि इस बच्चे ने तो बहुत ही तत्व की बात कह दी है।

वह बालक चौंकी पर जाकर बैठ गया और राजा को बोला, राजन! अपना सवाल करो? उसने सवाल किया कि यह सच्चा या वह सच्चा?

वह बोला यदि तुमने जिस प्रकार का सवाल किया है उसी प्रकार का जवाब लेना है तो यह भी झूठा है और वह भी झूठा है।

कहने लगा कि लेकिन किसी के समझ में नहीं आएगा। उसने सारे ऋषियों मुनियों की तरफ देखा कि सभी चुप करके बैठे हुए हैं। उन्हें समझ में ही नहीं आया कि यह क्या जवाब हुआ कि दोनों झूठे हैं।

उस समय राजा बोला, मुझे तो कुछ भी समझ में नहीं आया है।

उस बालक ने कहा, राजन्! तुम खोल कर सवाल करो, हम खोलकर जवाब देंगे।

जब राजा ने बात को खोलकर नहीं किया तो वह कहने लगा राजन्! तुम तो खुलकर नहीं बता रहे हो, लेकिन मैं बतला देता हूँ। दरअस्ल वह त्रिकालदर्शी था। त्रिकालदर्शी उसे कहते हैं जिसे भूत, भविष्य और वर्तमान यानि कि तीनों कालों का ज्ञान हो। हम लोगों का तो तरीका ही कुछ अलग प्रकार का है और फिर हम लोग तो उस अवस्था तक पहुँच ही नहीं पाते हैं जहाँ तक कि गुरू जी हमें ले जाना चाहते हैं। हम तत्व की बात को समझ ही नहीं पाते हैं। वास्तविक बात यह है कि जब व्यक्ति के अन्दर आत्मिक ऊँचाई आ जाती है, तो उस समय यह शक्ति आ जाती है कि वह भूतकाल के समय को या भविष्य काल के समय को वर्तमान में खींच लेते हैं। वह हजारों साल पिछली बात को भी देख सकता है और हजारों साल अगली बात को भी वर्तमान में खींच कर देख सकता है। ऐसी दिव्य शक्ति का आविभार्व उसके अन्दर हो जाता है, अर्थात वे लोग भूत, और भविष्य को वर्तमान में खींच कर देख लेते हैं, ऐसी महान आत्माओं को त्रिकालज्ञ या त्रिकालदर्शी कहते हैं।

अत: यह बालक, जिसका नाम अष्टावक्र था, त्रिकालज्ञ था इसलिए वह बोला, राजन! चलो फिर मैं ही सबको रहस्यात्मक बात बताता हूँ। वह सभा में उपस्थित ऋषियों-मुनियों को कहने लगा, सम्ममाननीय ऋषियो व मुनियो! मैं अत्यन्त विनम्र भाव से निवेदन करता हूँ कि इस राजा को आठ वर्ष पहले एक सपना आया था, उस स्वप्न के अन्तर्गत इसका राजभाग समाप्त हो गया और इसे अत्यधिक जलील होना पड़ा। वहाँ पर इसे ईंट पत्थर भी मारे गए। बहुत ही सख्त शब्द इसे बोले गए और भूखे-प्यासे को इसे अपने राज्य से बाहर निकाल दिया गया। इसके शरीर में से उस समय जगह-जगह से खून बह रहा था। वहाँ से जाने के बाद यह अगले राज्य में चला गया और एक बेरी के कटे हुए पेड़ के ठूँठ पर बैठ गया। इस समय इसे बहुत तेज भूख भी लगी हुई थी। किसी ने पूछा, अरे भई! तुम रो रहे हो, तुम्हें क्या तकलीफ है? वह बोला, मैं राजा जनक हूँ, मेरा राजभाग छीन लिया गया है और मुझे मार पीट कर वहाँ से निकाल दिया गया है, मेरी रानियाँ भी वहाँ पर रह गई हैं और मुझे बहुत अधिक बेइज्जत भी किया गया है। मेरे बच्चे भी वहीं पर रह गए हैं। उन्होंने भी मेरी बेइज्जती की है और अब तीन दिन से मुझे न तो कुछ खाने को मिला है और न ही कुछ पीने को मिला है। राजा का हुक्म था कि जो भी इसे रोटी-पानी देगा उसे भी इसके साथ ही राज्य से बाहर निकाल दिया जाएगा। इस समय में, मेरे जो अत्यन्त विश्ववसनीय मित्रगण व रिश्तेदार थे, उन्होंने भी मुझसे अपना किनारा करना ही बेहतर समझा।

वह बोला, ठीक है, मैं, तुम्हारी बात समझ गया वह सामने लंगर चल रहा है, किसी सेठ ने लंगर लगाया हुआ है, पंक्तियां लगी हुई हैं। तुम भी पंक्ति में खड़े होकर भोजन

प्राप्त कर लो और खाकर अपनी भूख मिटा लो। अब वह पंक्ति में खड़ा हो गया, वहाँ पर खिचड़ी बाँटी जा रही थी। जब इसकी बारी आई तो खिचड़ी बाँटने वाले कहने लगे कि खिचड़ी गर्म है, इसलिए तुम इसे अपने हाथों पर नहीं ले पाओगे। जाओ कोई बर्तन लेकर आओ। पास में पैसा कोई नहीं था, इसलिए वह भीख माँगने लगा। किसी भी तरह से उसे 19 कौड़ियाँ मिल पाई। उन कौड़ियों के बदले में वह एक मिट्टी का कसोरा ले आया। लेकिन जब वह खिचड़ी लेने के लिए पहुँचा तब तक लंगर भी वितरित हो चुका था और अब तो केवल बर्तनों के नीचे वाली खुरचन जो बर्तन के तले के साथ लग कर प्रायः जल जाया करती है, वह खुरचन ही शेष बची थी। उसने वही अपने उस मिट्टी के बर्तन में डलवा ली। साथ ही उस लंगर बाँटने वाले ने कहा कि देखो वहाँ पर घी मिलता है, वहाँ से घी डलवा लो, फिर तुम इसे खा पाओगे अन्यथा यह तुम्हारे गले से नीचे नहीं उतरेगी। जब वह वहाँ गया तो इसके हाथ काँप गए, फलस्वरूप घी नीचे गिर गया। अब उस घी बाँटने वाले ने इसे खूब भला-बुरा कहा। इसके बाद यह दोबारा विनतियाँ करता रहा कि महाराज जी! यह कड़वी बहुत है, शुष्क है, मेरे गले में से यह कैसे निकलेगी। जब बार-बार वह विनती करता रहा तो उस घी बाँटने वाले ने एक चम्मच घी उसकी खिचड़ी में डाल दिया। साथ ही कहा कि थोड़ा पीछे हटकर खाओ। जब कुछ दूरी पर जाकर वह खाने लगा तो दो सांड़ आपस में भिड़ पड़े। अभी इसने मुँह में एक कौर भी नहीं डाला था कि हाथ से वह मिट्टी का कसोरा छूट गया और सारी घी-खिचड़ी नीचे गिर पड़ी। वह स्वयं भी सांडों की लड़ाई से चोटिल हो गया और जब उसे चोट लगी तो उस समय उसकी जाग खुल गई। जब वह नींद से जागृत हुआ तो क्या देखता है कि वह तो तख्त पर बैठा हुआ है। लेकिन उसका ख्याल इतना पक्का हो गया था यूँ कह लें कि सपने का प्रभाव इतना गहरा पड़ गया कि उसे यह निर्णय करना कठिन हो गया कि यह सच्चा है या वह सच्चा है।

यदि व्यक्ति का दिमाग हिल जाए तो उसे कुछ भी पता नहीं चल पाता है क्योंकि फिर जो भी ख्याल चल जाता है, वही चलता रहता है। चाहे वह बादशाह ही क्यों न हो लेकिन यदि पागलों वाली बातें करने लग पड़े तो पागलों की भांति ही बोलता रहेगा। यदि अमीर आदमी कंगाल बन गया तो यही कहता रहेगा कि मेरा सब कुछ इन्होंने छीन लिया है, मुझे इन्होंने लूट लिया है, मुझे मार रहे हैं, ये तो मेरे पीछे पड़े हुए हैं। जो भी ख्याल दिमाग में बैठ जाता है, बस वही चलता रहता है।

'चलता'

(पृष्ठ 5 का शेष)

यह एक विलक्षण मार्ग है। इस सूक्ष्म व कठिन मार्ग को सरल बनाने के लिए ही प्रस्तुत मैगजीन के माध्यम से दिशा निर्देश दिए जाते हैं। गुरू जी के चरणों में यही प्रार्थना है कि वे कृपा करें ताकि हम सबको इस मार्ग की समझ आ जाए, जिसके फलस्वरूप हमारे जन्म-जन्मान्तरों के पाप दूर हो जाएँ और हम उनसे मुक्त होकर अपने लोक व परलोक को सफल बनाने में कामयाब हो जाएँ।

चरन चलउ मारगि गोबिंद ॥
मिटहि पाप जपीऐ हरि बिंद ॥ *अंग - 281*

रतवाड़ा साहिब ट्रस्ट के वर्तमान मुखी सन्त बाबा लखबीर सिंह जी 22 मई से 12 जून तक गुरमति प्रचार फेरी के सन्दर्भ में इंग्लैंड गए हुए थे। वहाँ पर अनेकों प्रेमीजनों ने गुरमति समागमों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई और सत्संग व नाम वाणी के साथ जुड़ कर लाभ प्राप्त किया। विदेशों की काम-काज की व्यस्तता पूर्ण जिन्दगी में गुरमति का मार्ग किस प्रकार से सहायक सिद्ध होता है, घर में रहते हुए अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को सम्भालते हुए स्वयं को किस प्रकार से समर्थ गुरू की हाजिरी में रखना है तथा सतगुरू की महिमा का गुणगान किस प्रकार से करना है इत्यादि। गुरमति विचारों के माध्यम से महापुरुषों ने अनेकों दीवान सजाकर संगत को शब्द गुरू श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के साथ जोड़ा। रतवाड़ा साहिब की पावन भूमि पर 17 जून को दिन के समागम शहीदों के सिरताज धन्य श्री गुरू अरजन देव जी की शहीदी के सम्बन्ध में तथा रात्रि के समागम प्यारे महापुरुषों के शत वर्षीय जन्म दिवस के सम्बन्ध में आयोजित किए गए। इन गुरमति समागमों में अनेकों प्रेमीजन खण्डे-बाटे का अमृतपान करके गुरू वाले बने तथा गुरू के लंगर निर्विघ्न रूप से जारी रहे। इन गुरमति समागमों में पृथक-पृथक वक्ताओं व कीर्तनकारों ने तमाम श्रद्धालुजनों को नाम वाणी के साथ जोड़ा। दीवानों के भोग के उपरान्त सतिनाम वाहिगुरू का जप करते हुए समस्त श्रद्धालुजन अपने-अपने घरों को लौटे।

बाबाणियाँ कहानियाँ

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक जून, अंग - 30)

सन्त महाराज जी द्वारा राड़े साहिब की ढक्की में की गई तपस्या ने उस स्थान को इतना पवित्र बना दिया है कि वे टीले जो आज खेतों में बदल चुके हैं वहाँ यदि कुछ मिनटों के लिये नेत्र बन्द करके बैठ जायें तो मुख एक दम एकाग्र होकर नाम की धारा चल पड़ा करती है। उन दिनों में जहाँ कहीं भी महापुरुष अपने स्थानों में प्रभु के प्यार में रहते थे उन सभी के जीवन बहुत ही प्रेरणा दायक थे। उनकी कथाएं सुनकर आज उत्तम जिज्ञासुओं को प्रेरणा मिलती है। ऐसे महापुरुषों में सन्त मग्घर सिंह जी रामगढ़ वाले जो अच्छे कद वाले थे। फौज में आपने नौकरी की थी। आप जी बहुत ही ऊँची आवाज़ में कीर्तन किया करते थे। मलवई धारणा में जब कीर्तन करते थे और गुरू दशमेश पिता जी की बाणी में से कवित्त सवैये पढ़ा करते थे तो एक प्रकार से जिज्ञासुओं को मोह लिया करते थे। इसी प्रकार मालवे के मशहूर विद्वान सन्त चन्दा सिंह जी कट्टू वाले, ज्ञानी इन्द्र सिंह जी मोगे वाले हुये हैं जिन्होंने अनेक जिज्ञासुओं के नशे छुड़वा कर उन्हें गुरू घर का बनाकर ऊँची अवस्थाओं में पहुँचाया। यह समय ही कुछ ऐसा था कि इस समय में भेखी सन्त कभी कोई सुना ही नहीं था। एक से एक बढ़कर तपस्या करने वाले, सेवा करने वाले महात्मा थे। सन्त सुन्दर सिंह जी बोपराये वाले जिन्हें भिन्डरां वाले भी कहा जाता है, पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे जब आप गुरू ग्रन्थ साहिब जी की बाणी की कथा करते थे तो कपाट खुलते जाया करते थे। आप जी ने अनेक गुरमत विद्यार्थियों को गुरू ग्रन्थ साहिब जी, दशम ग्रन्थ की, भाई गुरदास जी की वारें कवित्त सवैये आदि कठिन ग्रन्थ तथा और अन्य मतों के ग्रन्थों के विस्तार पूर्वक अर्थ करके समझाए। आप जी करनी कमाई में बहुत उच्च तथा पहुँचे हुये थे। एक बार आप जी बीमार थे और डाक्टर दीवान सिंह ने जब उनके शरीर में खून तथा कफ़ आदि तथा फेफड़ों को देखने के लिये सटैथोस्कोप द्वारा जांच पड़ताल करने की कोशिश की तो आप फेफड़ों को परखने के लिये सटैथो स्कोप लगाकर धीरे धीरे टागों से होते हुये पैरों तक पहुँच गये तथा फिर माथे तथा शीश को लगाकर देखा तो बहुत ही हैरान रह गये। महापुरुषों ने पूछा कि डाक्टर जी! हम इतना तो जानते हैं कि सटैथोस्कोप से बलगम की आवाज़ सुनी जाती है, दिल पर लगाकर दिल की धड़कने गिनी जाती हैं तथा खून की नाड़ियों पर लगाकर खून की चाल देखी जाती है पर आपने यह सारे शरीर पर क्यों लगाया? तो डाक्टर दीवान सिंह ने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की आप प्रभु इच्छा के मालिक हो। आप जी की बीमारी के बारे में हम कोई निर्णय नहीं दे सकते। यह आपकी मौज़ है यदि आप चाहो अपने आप ही पूर्ण रूप से स्वस्थ हो सकते हो। हमें तो आपने फालतू की सेवा प्रदान की हुई है। बहुत सारी संगत महापुरुषों के सामने बैठी थी और हैरान हो गई कि डाक्टर ने क्या बात कह दी। जब महापुरुषों ने फिर विस्तार से पूछा कि तुमने क्या निर्णय निकाला तो डाक्टर दीवान सिंह जी ने बताया कि महापुरुष जी! मैं स्टैथो स्कोप के साथ सचमुच ही फेफड़ों आदि को **examine** (जाँच पड़ताल) कर रहा था पर मैं हैरान हो गया कि शरीर में एक इन्च भी ऐसी जगह नहीं थी जहाँ वाहिगुरू नाम का उच्चारण मुझे न सुना हो। मुझे नहीं पता, मेरा यह यन्त्र काम करने से बन्द हो गया है या आपके शरीर के अन्दर वाहिगुरू मन्त्र का इतना जबरदस्त वेग है कि इस यन्त्र के बिना और कुछ सुनाई ही नहीं दे रहा। महापुरुषों ने सुना और मुस्करा दिये और कहा कि डाक्टर जी! हमारा शरीर तो जैसे शरीर होता है, उसी तरह का ही है, पर तुझ पर ही गुरू महाराज जी ने कृपा कर दी कि तुझे हमारे शरीर में से नाम की धुनि ही सुनती रही यह तो तेरी आन्तरिक अवस्था ही है जो बड़े सौभाग्य से प्राप्त हुआ करती है जैसा कि बाणी में फ़रमान है -

जो बोलत है म्रिग मीन पंखेरू
सु बिनु हरि जापत है नही होर॥ अंग - 1265

तथा -

धरति पातालु आकासु है मेरी जिंदुड़ीए

सभ हरि हरि नामु धिआवै राम।
पउणु पाणी बैसंतरो मेरी जिंदुड़ीए
नित हरि हरि हरि जसु गावै राम।
वणु त्रिणु सभु आकारु है मेरी जिंदुड़ीए
मुखि हरि हरि नामु धिआवै राम। अंग - 540

महापुरुषों ने अवस्था को टालते हुये डाक्टर की ही बात की क्योंकि अति उत्तम महापुरुषों का गुण है कि अपनी अवस्था को कभी प्रकट नहीं करते। इस बात को सन्त गुर बचन सिंह जी खालसा भिन्डरां वालों ने भी सुना। आप जी ने महापुरुषों के पास प्रार्थना की जैसे आपने डाक्टर दीवान सिंह पर कृपा करके अपने रोम रोम में से नाम की धुन सुनाई है आप दास पर भी कृपा करो इस अवस्था की जानकारी करवाओ उस समय महापुरुषों को दया आई और कहने लगे, गुरसिख! सारी सृष्टि में नाम धुन चल रही है, इस नाम धुन के सहारे ही खण्ड, ब्रह्मण्ड, अपनी गति में सीमित तथा नियामित रह कर अपना कार्य कर रहे हैं। नाम के बगैर तो कोई जगह है नहीं जहाँ नाम धुन न हो। सुखमनी साहिब में तुम हर रोज़ पढ़ते ही हो -

सो अंतरि सो बाहरि अनंत।
घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत।
धरनि माहि आकास पइआल।
सरब लोक पूरन प्रतिपाल।
बनि तिनि परबति है पारब्रहमु।
जैसी आगिआ तैसा करमु।
पउण पाणी बैसंतर माहि।
चारि कुंट दहदिसे समाहि।
तिस ते भिंन नही को ठाउ।
गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ॥ अंग - 293

आपने हुक्म किया कि भाई गुरबचन सिंह जी! आप जिस दरवाज़े के पास खड़े हो, इस दरवाजे के साथ कान लगाकर सुनो? वह हैरान हो गये कि बहुत ही अति प्यारी धुन सुनने लगी। दीवार के साथ कान लगाये तो दीवार में से भी वही धुन सुनती रही है और निर्णय किया कि गुरबाणी में जो वचन आये हैं सचमुच ही सभी चीज़ों में नाम की धुन है तथा नाम ने ही सारी सृष्टि को धारण किया हुआ है -

नाम के धारे सगले जंत। नाम के धारे खंड ब्रहमंड।
अंग - 284

ऐसे महात्मा उस समय करनी कमाई वाले हुआ करते थे। इसी तरह सन्त मनी सिंह जी दियाल पुर के सन्त समाज को अति ऊँचा ले जाने वाले थे। परम श्रेष्ठ महापुरुष सन्त अतर सिंह जी मस्तुआणे वाले उसी समय के दौरान हुये थे। सन्त महाराज अतर सिंह जी रेरू साहिब वाले पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे आप भी उस स्वच्छ एवं पवित्र समय में हुये हैं। इसी समय परम वीत राग महा तपस्वी मस्ताने साधु बाबा बीरम दास जी विधौशी वालों के दर्शन संगतों को प्राप्त थे। पटियाला में उच्च कोटि के महात्मा जैसे कि बाबा धिआन दास जी के जिन्हें लोग बाबा धिआना जी के नाम से जानते थे। सन्त सोहन दास जी, सन्त साहिब दास जी, सन्तोख दास जी करनी कमाई वाले हुये हैं। उस समय के साधुओं के पीछे रिद्धियाँ-सिद्धियाँ हाथ जोड़े तरले किया करती थीं कि हमसे सेवा लो, हम भी अपना जीवन सफल करें। उस समय के एक महात्मा की कथा है कि एक महात्मा भठिन्डा के निकट सीधे सादे पहरावे वाले हुये हैं। आप जी के पास जिज्ञासु उमड़-उमड़ कर जाया करते थे और आप जी के दर्शन इतने महान थे कि बिना बोले ही कामनायें पूरी हो जाया करती थीं। आप जी की क्रिया कुछ अजीब ही थी और संगतों के आराम के लिये 500 चारपाईयाँ बनवा कर रखी हुई थीं। लंगर का पूरा प्रबन्ध था पर रहते आप अकेले ही थे। और साधु आपके पास कम ही ठहरा करते थे। माया का इतना प्रसार हो गया था कि सरकार को भी यह सन्देह पैदा हो गया कि इनके पास धन कहाँ से आता है, इतना खर्च कहाँ से करते हैं। हज़ारों लोगों की आवाज़ाई, पुलिस वालों को अच्छी न लगी, उन्होंने एक दिन महापुरुषों को कहा कि महापुरुषो! आपने अपनी रिहायश के लिये कोई पक्के मन्दिर तो बनवाये हुये नहीं हैं हमें यहाँ पर सदा ही चौकसी रखनी पड़ती है कि तुम्हारे पास कोई **criminal** (मुजरिम) न आते हों। सो अच्छा होगा कि यदि आप यह जगह छोड़कर चले जाओ। पुलिस वालों ने कहा कि हम आपकी चारपाईयां इक्ट्ठी कर देते हैं, और सामान भी इकट्ठा कर देते हैं, यह आप गाड़ियों में लादकर और जगह ले जा सकते हो। जब सारा सामान एक जगह पर इकट्ठा हो गया तो महापुरुषों ने सारे सामान को आग लगा दी और कहा कि हम कौन सा सामान कहाँ लेकर जायें, क्या जरूरत है। वाहिगुरू जी ने अपने सन्तों को चारपाईयाँ देनी ही हैं तो जहाँ हम जायेंगे वहाँ वे अपने आप ही दे देंगे। जगह छोड़ कर आप चले गये, जहाँ जाकर फिर बैठे, वहाँ श्रद्धालु सेठों ने नलके लगवा दिये तथा चीनी की बोरियाँ भेजनी शुरू कर दी तथा सभी को शरबत फिर पिलाने शुरू कर दिये। सरकारी ऐजेन्टों ने फिर सेठों को भ्रम में डाल दिया कि तुम

यहाँ चीनी की बोरियां भेजते हो, यहाँ तो सरकारी भगोड़े आते हैं यदि कहीं सरकार ने पूछ-ताछ कर ली तो तुम्हारा नाम भी इस में आ जायेगा। सेठों ने डर के मारे चीनी भेजनी बन्द कर दी। जब सन्तों को पता चला तो आपने फ़रमान किया कि नलके चला कर पानी कड़ाहों में भरते जाओ। चीनी, चीनी का मालिक अपने आप डालता रहेगा। कई कई हज़ारों का इकट्ठ हो जाया करता था तथा सभी मीठा पानी नलकों का पीकर जाया करते थे। सो ऐसे बहुत से शक्तिशाली महात्मा हुये हैं। वाहिगुरू जी का बिरद **(duty)** है कि वह अपने प्यारों का काम आप करते हैं -

अचिंत कंम करहि प्रभ तिन के जिन हरि का नामु पिआरा।
अंग - 638

छोटे सन्त महाराज, सन्त किशन सिंह जी जब आप तोपखाने में नौकरी किया करते थे, उस समय दिन रात नाम की कमाई किया करते थे। रिद्धियां-सिद्धियां आप के पीछे पीछे हाथ जोड़े फिरती रहती थीं। एक दिन की बात है, आप अमृत बेला में सुधासर सरोवर पर गये हुये थे। यह सरोवर मोती बाग के एक कोने में है आप यहाँ बन्दगी किया करते थे और फिर समय पर जाकर तोपखाने की परेड में शामिल हो जाते। आज जब आप अपने कवार्टर में वापिस आए तो ताला खोलने के लिये जेब में हाथ डाला, हैरान हो गये कि चाबी कहाँ गई? परेड का समय हो चुका था। चाबी ढूंढने के लिये आपके पास समय नहीं था। आप जी को याद आया कि बाबा फरीद जी ने 'अलफ' कह कर ताला खोल दिया था। उस समय आपने 'सतनाम' की आवाज़ लगाई, ताला खुला ही नहीं बल्कि कुण्डों में से निकलकर बाहर आ गया। सो ऐसी करनी कमाई वाले महापुरुष गुप्त रूप में व्यवहार करते थे। पैसे इकट्ठे करने का फुरना किसी को नहीं आता था। यह सभी नाम की कठिन कमाई की बरकत ही है। प्रालब्ध अनुसार सभी चीज़ें अपने आप ही हो जाया करती हैं।

सन्त महाराज जी घोर तपस्या करते हुये सदा ही प्रभु के साथ समाधिस्थित रहते थे। आप जी ने एक बार मुझे बताया कि कई बार हम भादों के महीने में अमृत बेला में बैठ कर कुण्डा बन्द कर लेते तो पता नहीं कितने कितने घंटे बीत जाते न पानी पीना न कुछ खाना। इसी तरह से अमृत बेला में ठण्डी रेत के ऊपर जाकर ऊंचे टीले के शिखर पर आसन जमा लेते, दिन निकल आता, जेठ के महीने की लू चलनी, रेत आग की तरह गर्म हो जाती पर आप जी ने वहाँ बैठे-बैठे कई-कई दिन बिता देने। जैसे-जैसे प्रेमी इस स्थान की ओर भौरों की तरह आकृषत होते चले आ रहे थे त्यों-त्यों पदार्थ प्रालब्ध अनुसार चले आते। सियानों ने प्रालब्ध को तीन भागों में बांटा है। अध्यात्म प्रकाश में आता है -

इछानिच्छ, प्रछिआ, त्रिबिधि करम के भोग।
जनम आदि मरनांत लौ, कहत सयाने लोग।
आध्यात्म प्रकाश

पहली प्रकार की प्रालब्ध, अपने मन का संकल्प होना पर पदार्थ ने प्रालब्ध अनुसार ही मिलना।

दूसरा हुआ करता है कि किसी पदार्थ की इच्छा न होना, न किसी और ने आकर प्रार्थना करना, स्वत: ही पदार्थ प्राप्त हो जाने, इसे अनिच्छा प्रालब्ध कहते हैं। जैसे कोई पुरूष किसी स्थान पर आराम करता है पास ही खरबूजों का बाड़ा है। दूसरे पुरूष ने देखा कि मैं इसे खरबूजे खिलाऊँ, उसने खरबूजे खरीदे और लाकर उसे दे दिये। इसे अनिच्छा प्रालब्ध कहते हैं।

इस प्रकार सारा कारोबार प्रालब्ध के वश चलता था। सन्त महाराज जी पूर्णमाशी तथा सक्रान्ति को ढक्की में कीर्तन स्वंय किया करते थे। ऐसे जैसे 7, 8, 9 माघ के वार्षिक जोड़ मेले पर सारी रात आप ही कीर्तन किया करते थे। दास अपनी माता तथा और श्रद्धालुओं के साथ इन दीवानों में राड़े साहिब पहुंचा करता था। उन दिनों लाऊडस्पीकर नाम की कोई चीज़ नहीं हुआ करती थी। न ही बिजली की रोशनी हुआ करती थी। सन्त महाराज जी ने रहरास साहिब के पाठ के बाद आप कीर्तन आरम्भ कर देना। हम सभी खेती के काम काज निपटा कर पैदल ही धमोट से चलते जब धलौटी राड़े साहिब की ओर दरवाज़े पर पहुंचते तो सन्त महाराज जी की आवाज़ सवा मील की दूरी से ऐसे सुनाई देती जैसे थोड़ी सी दूरी पर ही कीर्तन हो रहा हो। उस आवाज़ में इतना प्रबल आकर्षण होता था कि दरवाज़ा पार करते ही धीरे-धीरे चलने की बजाये, सारे ही कीर्तन प्रेमी दौड़ पड़ते थे और दीवान में पहुँच जाते। वहाँ सारी ढक्की में पूरी तरह से एक-एक अक्षर सुनाई देता था, परमात्मा ही जानता है कि क्या उन दिनों में हमारे कान ही मज़बूत हुआ करते थे या महापुरुषों की आवाज़ ही इतनी शक्तिशाली हुआ करती थी कि जो डेढ़ दो मील तक आराम से सुनी जा सकती थी। धारना सुनकर हम एक दूसरे को बता दिया करते थे कि महाराज जी यह धारना पढ़ रहे हैं। जब रात शान्त एवं स्थिर

हो जाती थी तो घडानी, घणसा खटड़े आदि गांवों में चारों तरफ आवाज़ सुनाई दिया करती थी इसी प्रकार सन्त अतर सिंह जी मस्तुआणे वालों की आवाज़ शान्त एवं स्थिर रात में मीलों तक सुनाई देती थी।

आप जी कीर्तन करने के लिए सामने रखी हुई मेज़ पर बाजा रख लेते, नेत्र बन्द कर लेते और सारी रात कीर्तन की, व्याख्यान की ऐसी वर्षा करनी की कोई भी पसीजे बिना न रहता। आप जी कई बार मुझे बताया करते थे कि मन में इतना वैराग हुआ करता था कि आसूँ बह चलने, वे दाढ़ी से होते हुये शरीर के साथ-साथ चलते हुये पैर के अंगूठे तक पहुँच जाया करते थे। हमें न तो स्थान का ज्ञान होता था कि कहाँ पर खड़े होकर कीर्तन कर रहे हैं? न ही इस बात का ज्ञान रहता था कि कितनी संगत सुन रही है, बाणी का रूप होकर, पूर्णतया लीन होकर कीर्तन हुआ करता था। हमें कभी भी थकावट नहीं हुआ करती थी।

साधु संगत जी! ये वचन पूरी तरह से यथार्थता पर आधारित हैं। पहले समय में महापुरुष काफी लम्बे समय तक कीर्तन कर लिया करते थे, घंटों लगातार कीर्तन करके थकते नहीं थे। श्री मान भाई साहिब भाई रणधीर सिंह जी ने आसा जी की वार का कीर्तन शुरू करना और कई बार शाम के चार बज जाते थे। 14 घंटों के कीर्तन के उपरान्त भी महापुरुषों के पास न तो बाणी खत्म होती थी और न ही आप थकते। कीर्तन के बाद ऐसा मालूम होता था जैसे काफी लम्बे समय की आराम **(Rest)** करके संगतों में आए हो। थकावट क्यों नहीं होती? यह पूर्णतया वैज्ञानिक दृष्टिकोण है; जब कीर्तन में अपना आपा ही भूल जाता है स्थान भूल जाता है, कौन सुन रहे हैं यह भी भूल जाता है तो एक ऐसी शक्ति प्रकट हो जाती है, एक ऐसा रस कीर्तन करने वाले को अपने अन्दर तर कर देता है जिसकी शक्ति से सारा नाड़ी संस्थान **(Nervous system)** अमृत फुहारों में बिल्कुल नया नरोया हो जाया करता है। जब सुरत की तार वाहिगुरू जी के साथ जुड़ जाये तो थकावट की जगह कीर्तन के स्थान पर ताजा ऊर्जा का प्रवाह चलकर शरीर को नया नरोया बना देता है। थकावट केवल तभी होती है जब जबरदस्ती कीर्तन करना पड़े और कीर्तन को घंटों में बन्द करके दस-दस, बीस-बीस हज़ार रूपये एक घंटे के लेने हों। उस समय कीर्तन, कीर्तन नहीं कहलाया करता, वह एक कलाकार की कला जिसकी प्रदर्शनी संगतों में करता है, हुआ करती है। स्वंय वह खाली (कोरा) रहता है, रीता रहने के कारण उसका अमित ऊर्जा के साथ सम्बन्ध नहीं जुड़ता और शारीरिक बल लगाने से उसका दिमाग थक जाया करता है।

सन्त महाराज जी सर्दियों के मौसम में 12 घंटे कीर्तन किया करते थे जिसमें से केवल थोड़े से समय के लिये शारीरिक क्रिया तथा स्नान आदि करके श्री आसा जी की वार में से कुछ श्लोक पढ़ते-पढ़ते ही वापिस आकर फिर कीर्तन करना शुरू कर देते थे। आप भी एक लम्बी समाधि में लीन हो जाया करते थे। इसी तरह से श्रोतागण शब्द में लीन हुए अपना आपा भूल कर घुटने भी नहीं हिलाते थे। समय तो वह भी कलयुग का था, अब भी समय कलयुग का ही है पर उस समय महापुरुषों की सिदक दिली (पक्का इरादा) वाहिगुरू प्यार, उत्साह, अमृत की वर्षा करवाता था और श्रोतागण शब्दों के बाण सहते हुये घायल हो जाया करते थे। सारे पापों का नाश हो जाया करता था और गुरू घर के बन कर अमृत बेला में जागना, बाहर एकान्त स्थानों पर भजन करना इन गाँवों में प्राय देखने को मिल जाता था। उन दिनों में कीर्तन करने वालों के बाजों पर कोई पैसे नहीं रखता था क्योंकि सभी कीर्तन में मस्त होकर अफूर अवस्था में बैठा करते थे। बाणी के मूल्य के लिये अपना आपा (निजित्व) अर्पण कर दिया करते थे। आजकल के सन्त, रागी, प्रचारक कीर्तन के समय संगतों द्वारा भेंट किये गये पैसे बाजों पर रखवा लेते हैं जो नीरसता पैदा करते हैं और अमूल्य कीर्तन को कुछ दमड़ियों के भाव बेच कर, प्रार्थनाएं (अरदासें) करते हैं। उस समय साधुओं के पीछे रिद्धियां-सिद्धियां, माया हाथ जोड़े फिरती रहती थी। आप त्यागी थे और बड़े-बड़े डेरे नहीं बनवाते थे केवल मस्तुआणे वाले सन्त जी ने तख्त दम दमा साहिब बनवाया था, अन्य गाँवों में छोटे-मोटे गुरुद्वारे बनवाए थे। मस्तुआणे में एक बड़ा भारी कालिज़ बनवाकर बेअन्त बच्चे उसमें पढ़ने लायक हो गये।

'चलता'

आत्म ज्ञान

सन्त वरियाम सिंह जी
सम्पादक - प्रो. गुरदेव सिंह

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक जून, पृष्ठ - 41)

यदि किसी व्यक्ति के पास राजनैतिक शक्ति आ जाए तो यह भी बहुत बड़ी रुकावट है क्योंकि इसके साथ भी मन मलिन हो जाता है। जो पहले साधारण व्यक्तियों की भांति मिल जाता था फिर उसके चहुँओर पहरे लग जाते हैं, उसकी व्यस्तताएँ बढ़ जाती हैं, स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है, फलस्वरूप वही व्यक्ति बेगाना हो जाता है। यदि अमीरी आ जाए ऊँची जाति का अभिमान आ जाए अपने सौन्दर्य का अभिमान आ जाए, शारीरिक शक्ति या शिक्षा का घमण्ड आ जाए तो ये सारी चीजें व्यक्ति को ठगने का कार्य करती हैं। इन ठगों ने सारे संसार को बाँधा हुआ है और यह जीव बेवश होकर स्वंय को जानता-पहचानता भी नहीं है कि मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ -

सुनहु रे तू कउनु कहा ते आइओ ॥
एती न जानउ केतीक मुदति चलते खबरि न पाइओ॥
अंग - 999

यदि उससे पूछो तो कहेगा जी मैंने तो पी.एच.डी. की हुई है। मैं इस बात को जानता तो नहीं हूँ, लेकिन मैंने यह बात सुनी हुई है कि मैं आत्मा हूँ। प्रेमीपुरुष! आत्मा को जाना नहीं जाता है और इसके बारे में बात भी नहीं की जा सकती है बल्कि यह तो चिन्ह मात्र अनुभव होता है। पढ़ने के माध्यम से या जानने से बात नहीं बना करती है बल्कि इसे तो साधन करके बूझना पड़ता है और यह तभी सम्भव हो पाता है जबकि समर्थ गुरू की कृपा हो जाए।

इस बात को पहले मान लेना चाहिए कि मुझे वाहिगुरू से बिछुड़े हुए बहुत जन्म व्यतीत हो गए हैं और दुश्मनों, ठगों व चोरों के साथ मेरा नाता पड़ जाने के कारण मैं परमेश्वर को भूल गया हूँ। अच्छे भाग्य के कारण यदि सत्संग मिल जाए और उसके माध्यम से सही मार्ग की प्राप्ति हो जाए तो फिर उस मार्ग का अनुसरण करके यह जीव अपनी मंजिल पर पहुँच जाता है। यदि सुनता ही सुनता है और अमल नहीं करता है तो फिर यह मंजिल पर नहीं पहुँच सकता है। जिस जीव को मूर्छित करने वाली नींद आई हो तो वह तो उठता ही नहीं है यानि कि गाढ़ी नींद में से वह जागता ही नहीं है। यह हाल एक, दो, चार का नहीं बल्कि सारा संसार ही सोया पड़ा है। पढ़े हुए, अनपढ़, अमीर तथा गरीब सभी सो रहे हैं, कोई विरला व्यक्ति ही जागता है। महात्मा इसे ऊँची आवाज दे देकर हार जाते हैं, लेकिन यह जागता ही नहीं है -

तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता
सुतिआ रैणि विहाणी ॥ *अंग - 320*

फरीदा कूकेदिआ चाँगेदिआ मती देदिआ नित ॥
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित ॥
अंग - 1378

चार वेद, छः शास्त्र, सत्ताइस स्मृतियां, उपनिषद, कुरान शरीफ, तौरेत, अंजील, जम्बूर, बाइबिल तथा श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी एवं साधू-सन्त व अनेकों अन्य धार्मिक ग्रन्थ इस जीव को माया की नींद से जगाने का प्रयत्न कर रहे हैं। रामायण के इतिहास में जिक्र आता है जो कुम्भकर्ण था, उसे इतनी नींद आती थी कि वह 5-6 महीने जागता ही नहीं था, उसके बाद उसे ढोल बजा बजाकर जगाया जाता था। रीछ तथा मेंढक को भी इसी प्रकार से नींद आती है और वे कई-कई महीने सोते ही रहते हैं। कुम्भकर्ण तो फिर भी छः महीने बाद जाग जाता था लेकिन इस संसार को ऐसी गाढ़ी नींद आ गई है कि यह जागता ही नहीं है, जबकि रात दिन इसे, इसके दुश्मन लूटने पर लगे हुए हैं। यथा -

मुसनहार पंच बटवारे ॥
सूने नगरि परे ठगहारे ॥ *अंग - 182*

इसु देही अंदरि पंच चोर वसहि
कामु क्रोधु लोभु मोहु अहंकारा ॥
अंम्रितु लूटहि मनमुख नही बूझहि
कोइ न सुणै पूकारा॥ *अंग - 600*

फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानस देह लही ॥
नानक कहत मिलन की बरीआ सिमरत कहा नही ॥
अंग - 631

इस जीव को योनियों के चक्रव्यूह में फँसे हुए युगों के युग बीत गए हैं और अब इसे मनुष्य शरीर प्राप्त हो गया है और यह अभी भी उपदेश नहीं सुनता है और गाफिल होकर सोया पड़ा है। महात्मा बेवश हो जाते हैं कि यह संसार सत्य की बात सुनता क्यों नहीं है? आखिर महात्मा बुद्ध जी ने भी

यह बात कही है कि रुपए-पैसे के बारे में इसे कहें तो यह झट से समझ लेता है और मान भी लेता है लेकिन यदि इसे सत्य की बात कही जाती है तो फिर यह मानने को तैयार ही नहीं होता है। कहा जाता है कि जो मार देवता है वह इसे सत्य की बात को मानने ही नहीं देता है। इसके मन के अन्दर माया की तरफ लगाने वाली शक्ति विद्यमान है जो इसकी बुद्धि को बदल देती है जिस कारण से मनुष्य गुरू के वचनों को मानने से असमर्थ रहता है। शेर दृष्टि की जगह पर कुत्ता दृष्टि होने के कारण जीव, परमात्मा को पहचानता ही नहीं है और माया के प्रपंच में उलझा रहता है।

श्री कृष्ण महाराज जी ने अर्जुन के साथ बातचीत करते हुए एक बात कही थी कि मैं सारे संसार का कार्य त्रिगुणी माया के पीछे होकर करता हूँ और जीव के ऊपर जब माया पड़ती है तो फिर वह प्रभु जी को पहचान नहीं सकता है। अर्जुन कहने लगा, भगवन्! यह कैसे हो सकता है? जीव किस प्रकार से भूल जाता है? और मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ? श्री कृष्ण महाराज जी कहने लगे सिद्ध-साधक, देवी-देवते आदि सभी भूले पड़े हैं, तुम हठ मत करो। यदि मैंने तुम्हारे ऊपर माया डाल दी तो फिर तुम भी भूल जाओगे। वह कहने लगा, मुझे माया दिखाओ मेरे ऊपर भूल नहीं पड़ सकती है। वहाँ पर पास में ही एक सरोवर था। आप जी (श्री कृष्ण महाराज जी) कहने लगे, अर्जुन! जाओ! इस बर्तन में सरोवर में से पानी लेकर आओ ताकि हम दातुन करें। जब वह सरोवर में पानी लेने के लिए झुका तो उसी समय श्री कृष्ण महाराज जी ने उसके ऊपर माया डाल दी। अब न तो वहाँ पर सरोवर है, न श्री कृष्ण जी हैं, न कोई और चीज है यानि सारा दृष्य ही आपने बदल दिया। अब वहाँ पर एक भयानक जंगल है, सामने शेर आ रहे हैं। शेरों से डरकर वह एक पेड़ के पास गया और उसके ऊपर चढ़ गया। इधर एक साँप उस वृक्ष को अपनी लपेट में लेकर वृक्ष के ऊपर की तरफ आ रहा था। अब अर्जुन दूसरे वृक्ष पर चढ़ गया और श्री कृष्ण महाराज जी को आवाजें मारने लगा। तीन दिन व तीन रातें उसने उसी जंगल में वृक्षों पर चढ़कर ही व्यतीत कीं अब वह अपनी दुर्दशा को देखकर रोता हुआ घूम रहा है। काल (समय) को आगे पीछे कर देना भूतकाल को वापिस ले आना, भविष्य काल को खींच लेना, वर्तमानकाल को बदल देना यह सब कुछ महापुरुषों के हाथ में ही हुआ करता है।

गुरू पाँचवें महाराज जी के पास सकेत मण्डी का राजा दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। उसने माया आदि गुरू चरणों में रखकर नमस्कार की। उस समय सत्संग में इस प्रकार के वचन चल रहे थे -

लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि ॥

अंग - 937

इसने अपनी बुद्धि के द्वारा यह विचार की कि यदि लेख मिट ही नहीं सकता है तो फिर गुरू जी के पास आने का लाभ क्या हुआ? इसने अपने मन में वापिस जाने की सलाह बनाई लेकिन अर्न्यामी सतगुरू जी ने वचन कर दिया कि राजन्! आज की रात यहीं पर रुको और कल को हमारी आज्ञा लेकर ही जाना। रात में वह सो गया। सपने में उसने अपने शरीर का परित्याग कर दिया और दूसरी जगह किसी जमादार के घर में उसका जन्म हो गया। अब यह युवावस्था में पहुँच गया और किसी के घर मेहनत मजदूरी करने लग पड़ा और सारे काम काज करने लगा। इसके बाद इसका विवाह हो गया और कई बच्चे भी हो गए। सारी उम्र भोगने के बाद यह वहाँ से भी परलोक गमन कर गया। अब क्या देखता है कि इसके मृत शरीर को इसके परिजनों ने दफना दिया और सभी लोग रो-पीट रहे हैं यानि कि हाय-विलाप कर रहे हैं। इसके बाद इसे जाग आ गई और अब इसके सामने वह सारी झांकी घूम रही है जो कि सपने में इसने देखी थी और इसे अपने बच्चों के साथ मोह भी आ रहा है। साथ वह याद करके बहुत काँप जाता है कि मैंने नीच घर में जन्म ले लिया और वहाँ पर मेरा बहुत बुरा हाल हुआ। अब यह अत्यन्त उदास मुद्रा में बैठा है। इतने में गुरू महाराज जी का सन्देश आ गया कि घोड़े पर सवार होकर आ जाओ आज जंगल की सैर के लिए जाना है। जब जंगल में पहुँचे तो राजा के आगे एक हिरन निकल पड़ा। राजा ने घोड़ा उसके पीछे लगा लिया और बहुत दूर निकल गया। जंगल पार करने के बाद एक गाँव आ गया। रात में जिस प्रकार की जगह उसने सपने में देखी थी उसी प्रकार के वृक्ष, कुएँ तथा तालाबों आदि को देखकर हैरान होता जा रहा है। जब वह आगे गाँव की ओर बढ़ा तो वहाँ पर बच्चे खेल रहे थे। अब यह एक वृक्ष के साथ घोड़े को बाँधकर आराम करने लग पड़ा। उधर से एक बच्चा आ गया वह कहने लगा पिता जी! यह घोड़ा कहाँ से लिया है? घर चल कर देखो सारे रो रहे हैं? यह हैरान हो रहा है कि बच्चा तो मेरा ही है, लेकिन वह उसे दूर कर देता है कि चलो दूर भागो! मैं तो राजा हूँ। बच्चे ने घर पर जाकर बतला दिया, फलस्वरूप सारा परिवार आ गया तथा गाँव वालों ने भी आकर उसे घेर लिया। घरवाली कहने लगी, तुम हम सबको छोड़कर कहाँ चले गए थे। यह घोड़ा, कीमती वस्त्र, हीरों के हार वगैरह तुम कहाँ से चुरा लाए? वह बोली घर चलो। वहाँ पर बहुत बुरा झगड़ा पड़ गया। वह उन सबको बहुत समझाता है लेकिन लोग नहीं मानते हैं। इतने में सतगुरू जी वहाँ पर पहुँच गए और एकत्रित भीड़ को देखकर कहने लगे भाई लोगो! क्या हो गया है? तुम लोगों ने इस राजा को क्यों घेर रखा है? वे कहने लगे, यह तो हमारे गाँव का जमादार है। यह देखो इसका परिवार परेशान हो रहा है। महाराज जी कहने लगे, क्यों भाई राजन्! क्या

यह बात ठीक है? वह बोला महाराज जी! मेरे ऊपर कृपा करो। मुझे सब कुछ सत्य प्रतीत हो रहा है। मुझे लगता है कि मैं इधर भी हूँ और उधर भी हूँ लेकिन अब आप इनसे मेरा पीछा छुड़ाओ। महाराज जी बोले, प्रेमीजनो! कभी-कभी शक्लें मिल जाया करती हैं, लेकिन तुम्हारा व्यक्ति तो परलोक गमन कर गया था। जहाँ पर तुम लोगों ने उसे दबाया था, कब्र उखाड़ कर उसे वहाँ पर देखो। जब कब्र खोदी गई तो उनका व्यक्ति वहीं पर दबा पड़ा था। वे कहने लगे, महाराज जी! हमसे गलती हो गई है, फलस्वरूप सारे नमस्कार करके चले गए। इधर राजा भी नमस्कार करके पूछता है, महाराज जी! यह सब कौन सी लीला घटित हुई है? महाराज जी कहने लगे देखो तुमने लेख मिटने या न मिटनी की बात के बारे में ख्याल किया था, तुमने एक जन्म के चालीस साल तक चण्डाल के घर भोगने थे जो कि तुम्हारी मृत्यु के 40 साल बाद घटित होना था, लेकिन गुरू ने उस घटना को केवल स्वप्न मात्र में ही भुगता दिया। परमात्मा अपने द्वारा लिखे हुए लेखों को बदलता नहीं है लेकिन समर्थ गुरू के पास जीव के लेखों को मिटा देने की शक्ति होती है -

जो किछु करै सोई प्रभ मानहि
ओइ राम नाम रंगि राते॥
तिन् की सोभा सभनी थाई
जिन् प्रभ के चरण पराते ॥ *अंग - 748*

इस प्रकार से श्री कृष्ण महाराज जी ने अर्जुन को भविष्य का समय दिखला दिया और जब जंगल में से निकल कर वह वापिस आया तो किसी ने पूछा कि भाई तुम कौन हो और क्यों रोते हो? उस समय उसने बताया कि मैं अर्जुन हूँ और श्री कृष्ण जी को ढूंढ़ रहा हूँ, मुझे पता नहीं लग रहा है कि वे कहाँ चले गए हैं। वह कहने लगा पांडवों को यहाँ से गए हुए तो तीन सौ साल हो चुके हैं, वे तो अपने पौत्र परीछत को राजभाग सम्भालकर हिमालय पर्वत पर चले गए थे और श्री कृष्ण जी तो बधिक का बाण लगने के कारण शरीर का परित्याग कर गए थे। हमारे यहाँ धर्मशाला में तो महाभारत की कथा प्रतिदिन होती है यदि तुम्हें विश्वास नहीं है तो चलकर सुन लो। एक बात का ख्याल रखना कि कहीं स्वयं को अर्जुन मत कह देना, अन्यथा राजा तुम्हें कैद में डाल देगा। तुम अपना नाम परदेशी रख लो और इसी नाम से तुम्हें बुला लिया करेंगे। इसके बाद वह राजा की फौज में भर्ती हो गया और राजा ने उसकी शस्त्र निपुणता व उसके युद्ध कौशल को देखकर उसे सेनाओं का सेनापति या जरनैल बना दिया। उसके बाद राजा ने अपनी लड़की की शादी इसके साथ कर दी। अब यह भोगों में प्रवृत्त होकर सब कुछ भूल गया। आखिर उसकी घरवाली परलोक सिधार गई और जब उसका अन्तिम संस्कार करने लगे तो कहने लगा कि मैंने इसके साथ ही चिता में बैठकर जल जाना है। श्री कृष्ण जी ने ऊधौ को समझाने के लिए भेजा लेकिन कहने लगा कौन से श्री कृष्ण महाराज जी? उनको तो इस संसार से गए हुए तीन सौ साल बीत चुके हैं। ऊधौ ने कहा तुम अर्जुन हो, लेकिन वह तो मानता ही नहीं है, कहने लगा मैं तो परदेशी हूँ। कुछ देर बाद श्री कृष्ण महाराज जी स्वयं उसके पास आ गए और कहने लगे, अर्जुन! मोह के वशीभूत नहीं हुआ करते हैं, तुम्हारे ऊपर माया का प्रभाव है। हमने तो तुम्हें इतना अधिक उपदेश दिया था लेकिन तुमने तो सब कुछ भुला दिया। जब वह नहीं माना तो भगवान जी ने हल्का सा थप्पड़ मार कर उसकी सारी माया को दूर कर दिया। जब माया का प्रभाव दूर हुआ तब कहीं जाकर उसे होश आई। उस समय उसे दिखाई पड़ा कि वह तो सरोवर में पानी लेने के लिए खड़ा हुआ है। ठीक इसी प्रकार से माया पड़ने के कारण जीव भूला हुआ है। शनैः शनैः इसे यह माया इतना अधिक प्रभावित कर जाती है कि इसे फिर पास में रहता हुआ परमात्मा महसूस ही नहीं होता है और यह परमात्मा या वाहिगुरू जी से पृथक होकर एक जीव बन गया। वास्तव में तो माया है ही नहीं, बल्कि यह तो एक परछाई के सदृश्य है लेकिन इस जीव ने इस परछाई को ही अपना आप मान लिया है। जो असली साखी इस शरीर के अन्दर रहता है, उसे आत्मा कहते हैं। जीव उसे भूलकर स्वयं को शरीर मानकर ही बैठ गया है -

ईन् माइआ जगदीस गुसाई तुम्रे चरन बिसारे ॥ किंचत
प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे॥
अंग - 857

नानक तरवरु एकु फलु दुइ पंखेरु आहि ॥
आवत जात न दीसही ना पर पंखी ताहि ॥
अंग - 550

इस प्रकार से यह जीव स्वयं को भूल गया है और गुरू महाराज जी इसे समझाने की कोशिश करते हैं कि जो तुम अपने आप को शरीर बन कर बैठे हुए हो इसने तो रहना ही नहीं है। तुम सोच विचार करके देखो कि तुम्हारे माता-पिता व बुजुर्ग कहाँ चले गए? यदि यह संसार सत्य होता तो वे वापिस आ जाते लेकिन कोई भी वापिस नहीं आता है। नदी का पानी जब नाले में पड़ जाए तो उसका दोबारा नदी के साथ मिलना अत्यन्त मुश्किल हो जाता है। इसीलिए गुरू जी फुरमान करते हैं कि -

जाग लेहु रे मना जाग लेहु कहा गाफल सोइआ ॥
जो तनु उपजिआ संग ही सो भी संगि न होइआ ॥
अंग - 726

फरीदा किथै तैडे मापिआ जिन्ही तू जणिओहि ॥
तै पासहु ओइ लदि गए तूं अजै न पतीणोहि ॥
अंग - 1381

नदीआ वाह विछुंनिआ मेला संजोगी राम ॥
अंग - 439

'चलता'

सूरा सो पहिचानीऐ जो लरै दीन के हेतु

सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक जून, पृष्ठ - 44)

वचन पर कुर्बान हो जाना ही सबसे बड़ी कुर्बानी हुआ करती है। जब पाँच प्यारे हमें अमृतपान करवाते हैं तो हमसे भी वचन लिया जाता है कि ये तुम्हारे लिए नियमावली है तथा ये मर्यादाएँ हैं, जिनका तुमने पालन करना है तथा अमुक निषेध है, जिनसे तुमने बचकर रहना है। आज तुमने गुरू को शीश झुकाया है तो आज के बाद तुमने अपने मन को मति (बुद्धि) का त्याग करना है तथा गुरू की मति को धारण करना है। लेकिन हम लोग तो गुरू को नमस्कार करके भी-

सलामु जबाबु दोवै करे मुंढहु घुथा जाइ ॥
अंग - 474

वैसे हम लोग जो भी समझौता करते हैं तो यदि दोनों तरफ समान ताकत हो फिर तो ये समझौते कायम रहते लेकिन जब एक पक्ष की ताकत कम हो गई तो फिर दूसरी उस पर हावी हो जाती है यानि कि उस समय फिर किए गए सारे समझौतों व करारों को तोड़ने में देर नहीं लगाई जाती है। जफरनामे में गुरू गोबिंद महाराज जी ने लिखा है कि ऐ औरंगजेब! तुम कसमें खाकर भूल गए? तुम तो अकृत्घ्न हो, बेमुख हो। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार से राजनैतिक लोग समझौतों को तोड़ने में देर नहीं लगाते हैं।

इसी प्रकार से अंग्रेजों तथा महाराजा रणजीत सिंह के बीच जो समझौता सतलुज नदी के तट पर रोपड़ में हुआ था वह कितने समय तक कायम रहा? उधर महाराज रणजीत सिंह ने आँखें बन्द कीं और इधर अंग्रेजों की कुटिल नीति ने भाइयों-भाइयों को ही आपस में लड़वा दिया उनमें फूट डलवा दी। राजनीति के द्वारा ही फूट आती है। अब खालसा राज्य कितनी कुर्बानियों के द्वारा कायम हुआ लेकिन वह किस प्रकार से चला गया? इसका उत्तर यही है कि अंग्रेजों की कुटिल नीति, राजनीति और पारस्परिक फूट के कारण यह चला गया।

एकता में बल है। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी तो केवल एक की ही बात करते हैं, आपने कहा है 1 ओंकार अर्थात आपने 1 अंक को पहले लगा दिया है। वैसे तो वह कण-कण में व्याप्त है -

अमान है॥ निधान है॥
अनेक है॥ फिरि एक है॥ *जापु साहिब*

यहाँ पर दूसरा तो कोई है ही नहीं, सारी वाणी यानि कि 1430 अंगों में इस 'एक' की ही व्याख्या है। यदि हम पीछे की तरफ आएँ तो 'एक' पर आकर ही बात बनती है।

एक महात्मा एक कथा सुना रहे थे कि एकता में कितना बल है। आप कहने लगे कि जो नौ था उसने आठ को थप्पड़ मारा। कहने लगे क्यों मारा? इसलिए मारा क्योंकि बड़ा छोटे को मारता ही है, फिर आठ ने सात को मारा, सात ने छः को मारा, छः ने पाँच को, पाँच ने चार को मारा। इसी प्रकार से चार ने तीन को, तीन ने दो को और दो ने एक को मारा। अब एक ने देखा कि मैं किसे मारूँ? जब उसने नीचे देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि नीचे तो शून्य है। अब उसने शून्य को अपने गले के साथ लगा लिया। एकता की बरकत इतनी हुई कि वह नौ से भी बड़ा हो गया।

धन्य गुरू गोबिंद सिंह महाराज जी के चरणों में विनती की गई कि महाराज जी! हम नित्तनेम भी खूब करते हैं, वाणियाँ भी पढ़ते हैं, सेवा भी खूब करते हैं, लेकिन फिर भी हमारा मन वश में नहीं आता है?

महाराज जी कहने लगे, अच्छा फिर तुम लोग चार-चार विवाह करवा लो। वे बोले, चार विवाह? विवाह तो कई बार एक ही बहुत तंग कर लेता है।

गुरू जी बोले, प्रेमीजनो! वह विवाह नहीं बल्कि तुम करुणा, मुदिता, मैत्री व अपेक्षा के साथ विवाह करवा लो। जो अपने से छोटा है, उसे प्यार करो, फिर वह तुम्हें भी प्यार करेगा। जो अपने से बड़ा है, उसका सम्मान करो, जो बराबर वाले हैं, उनसे मित्रता कायम करो क्योंकि यदि दोनों एक जैसे हों तो फिर ईर्ष्या खड़ी हो जाती है। फिर तुम सबसे प्यार करो। जब प्यार करोगे तभी सामाजिक साझेदारी बन पाएगी।

जो तुम्हारे साथ अकारण ईर्ष्या करता है तो इससे मानसिक तौर पर उदास हो जाओ और गुरू चरणों में प्रार्थना करो कि महाराज जी इसे भी सद्बुद्धि प्रदान करो।

कहने लगे यदि यह बात सफल न हो तो चौथा होता है कि किनारा कर जाओ -

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ ॥
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ ॥
अंग - 1382

धर्म की नीति यही है कि -

फरीदा जो तै मारनि मुकीआँ तिना न मारे घुंमि ॥
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिना दे चुंमि ॥
अंग - 1378

घुम कहते हैं रुई के गोले को। माताएं जिस रुई से सूत का धागा कातती हैं उस रुई के गोले से वे बच्चों को मारती हैं ताकि उन्हें चोट न लगे। फरीद जी कहते हैं कि तुम इतना सा भी उसे न मारो।

इधर हम लोग तो ईंट का जबाब पत्थर से देने वाले हैं लेकिन धर्म की नीति यह नहीं सिखाती है।

श्री गुरू गोबिंद सिंह महाराज जी जवाब दे सकते थे लेकिन आप उन्हें मौका दे रहे हैं क्योंकि आप तो प्यार की मूर्ति हैं।

धन्य गुरू हरि गोबिंद साहिब जी ने आज के दिन अकाल तख्त की रचना की ताकि जो पन्थ से सम्बन्धित विवाद होंगे उन्हें यहाँ पर सुलझाया जा सकेगा। वैसे धर्म के मार्ग पर तो विवाद होने ही नहीं चाहिए, महापुरुष वचन किया करते थे कि यह देखो ! ये लोग धर्म के मार्ग पर चलते हुए भी लड़ने लगे हुए हैं। 'नाम' तो अपने अन्दर है लेकिन कुछ लोग कहेंगे कि चलो तुम्हें अमुक जगह से नाम दिलवा लाएँ। साधु संगत जी! नाम तो कोई भी नहीं दे सकता है क्योंकि नाम तो हमारे अन्दर है -

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु ॥
देही महि इस का बिस्रामु ॥ *अंग - 293*

निशानी भी बतला दी कि नाम कहाँ पड़ा है?

सुंन समाधि अनहत तह नाद ॥
कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥ *अंग - 293*

एक आवाज तो दो चीजों के टकराव से उत्पन्न होती है कम्पन पैदा होती है जबकि एक अनाहत होती है -

अनहत बाणी थानु निराला ॥
ता की धुनि मोहे गोपाला ॥ *अंग - 186*

असथिरु थानु सदा निरमाइलु आपे आपु उपाइदा ॥
अंदरि कोट छजे हटनाले ॥ आपे लेवै वसतु समाले ॥
अंग - 1033

उस जगह पर -

सत कै आसणि पुरखु रहै ॥ *अंग - 877*

उस जगह के बारे में क्या कहा जाए -

सुंन मंडल इकु जोगी बैसे ॥
नारि न पुरखु कहहु कोउ कैसे ॥ *अंग - 684*

हमारे सभी नौ दरवाजे बाहर की तरफ ही खुलते हैं केवल एक दरवाजा ही है जो कि अन्दर की तरफ को खुलता है। उस दरवाजे की शोभा ऐसी हे कि जिसका वर्णन कर पाना अत्यन्त कठिन है। इसी द्वार तक पहुँचने के लिए हम भजन करते हैं, नेत्र बन्द रखते हैं और बाहरी आवाजों से दूर रहते हैं।

यदि धर्म की नीति पर चले तो कभी भी किसी को दोष नहीं दिया जा सकता है। यदि दोष किसी को देना ही पड़े तो वह स्वयं को ही दिया जाता है -

ददै दोसु न देउ किसै दोसु करंमा आपणिआ ॥
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥
अंग - 433

जो जो दीसै सो सो रोगी ॥
रोग रहित मेरा सतिगुरु जोगी ॥ *अंग - 1140*

वे रोगी क्यों हुए?

कतिकि करम कमावणे दोसु न काहू जोगु ॥
परमेसर ते भुलिआँ विआपनि सभे रोग ॥
अंग - 135

यदि परमेश्वर को भूल जाएँ तो फिर एकाध नहीं बल्कि सारे ही रोग आ जाते हैं -

वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग ॥
खिन महि कउड़े होइ गए जितड़े माइआ भोग ॥
अंग - 135

भोगों की जिन्दगी रोगों को अपने साथ लेकर आती है-

आपीन्है भोग भोगि कै होइ भसमड़ि भउरु सिधाइआ॥
वडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ ॥
अगै करणी कीरति वाचीऐ बहि लेखा करि समझाइआ॥
थाउ न होवी पउदीओ हुणि सुणीऐ किआ रुआइआ॥
मनि अंधै जनमु गवाइआ ॥ *अंग - 464*

राजनीति के अन्दर व्यक्ति सदैव दूसरों को ही दोष देता है दूसरों के अवगुणों को ही देखता है, अपने अवगुणों को

नहीं देखता है।

दूसरी तरफ जब हम धर्म की नीति की तरफ चलते हैं तो वह कहेगा कि तुम दोष किसी अन्य को मत दो क्योंकि-

मन मेरे जिनि अपुना भरमु गवाता ॥
तिस कै भाणै कोइ न भूला
जिनि सगलो ब्रहमु पछाता॥ अंग - 610

दरअस्ल यहाँ पर दूसरा तो कोई है ही नहीं सबके अन्दर तो वही विराजमान है। जब आँख खुल जाती है तो किसी को बुरा क्या कहना है फिर तो वह स्वयं को ही बुरा कहता है। यथा -

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ ॥
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ ॥
अंग - 1364

जो इस पंक्ति में खड़ा हो जाए तो फिर वह हमारा मित्र है लेकिन हम तो इस माया में भूल गए हैं। वास्तव में तो माया ही भूल है। माया तो नाम ही भूल का है -

एह माइआ जितु हरि विसरै
मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ॥ अंग - 921

इसके अन्दर से मोह उत्पन्न होता है और दूसरे भाव में आकर हमने क्लेश खड़े कर लिए हैं। राग, द्वैष व क्लेश कब दूर होंगे -

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ ॥
कलि कलेस तन माहि मिटावउ ॥ अंग - 262

उस समय फिर क्या होगा? उस समय फिर जितने क्लह-क्लेश हैं, वे सब समाप्त हो जाएंगे।

धन्य श्री गुरू हरिगोबिंद साहिब महाराज जी ने आज अकाल तख्त की रचना की मीरी (राजनीति) को नीचे रखा तथा पीरी (धर्म) को ऊपर रखा। जब आप इन गुणों को धारण कर लोगे तो फिर तुम्हारे सारे भय समाप्त हो जाएंगे-

निरभउ जपै सगल भउ मिटै ॥
प्रभ किरपा ते प्राणी छुटै ॥ अंग - 293

फिर यह नहीं कि वे राजभाग प्राप्त करने के लिए लड़ते थे, राजनीति करते थे। वे तो -

राजा सगली स्रिसटि का हरि नामि मनु भिंना ॥
अंग - 707

जब उस नाम में ही स्थिति हो गई तो फिर तो वह राजा ही है -

आतम रस जिह जानही, सो है जलस देव।
प्रभ महि मोह महि तास महि, रंचक नाहन भेव।

फिर मुझमें तथा मेरे प्यारे में कोई फर्क नहीं रह जाता है -

हरि हरि जन दुई एक है, बिब बिचार कछु नाहि॥
जल ते उपज तरंग जिउ जल ही बिखै समाहि॥
बचित्र नाटक

यह तख्त की जो रचना रची है यहाँ पर सारे इकट्ठे हो जाते हैं। राजा लोग भले ही आपस में लड़ते झगड़ते थे लेकिन जब वे हरिमन्दिर साहिब सचखण्ड में जाकर नतमस्तक होते, अकाल तख्त के सामने नतमस्तक होते तो वे भाई-भाई बन जाते तथा पारस्परिक लड़ाइयों को भूल जाते। गुरू जी मन को सम्बोधन करते हुए कथन करते हैं कि -

मन नूं संबोधन कीता है -
नर अचेत पाप ते डरु रे ॥ अंग - 220

गुरू जी कहते हैं कि जो पाप अनजाने में हो जाएं उससे भी डरो और यदि कोई सब कुछ जानते हुए भी पाप करता है तो फिर उसे तो सजा मिलनी तय ही है।

कबीर मनु जानै सभ बात जानत ही अउगनु करै ॥
काहे की कुसलात हाथि दीपु कूए परै ॥अंग - 1376

हमें महापुरुष सावधान करते हुए उपदेश देते हैं लेकिन मन नहीं मानता है और मन तो उसी तरफ ले जाता है। वह तो सब कुछ जानते हुए भी उसी तरफ ले जाता है। वह तो सब कुछ जानते हुए भी कुएँ में गिरता है। मन के लिए ही तो हम सब लोग यह कार्य करते हैं, मन ही हमसे विभिन्न प्रकार के कार्य करवाता है। मन जैसा कोई दुश्मन भी नहीं है और मन जैसा कोई मित्र भी नहीं है। अब अकाल तख्त की रचना, धन्य गुरू हरिगोबिंद साहिब महाराज जी ने की। वैसे तो तख्त राजाओं के ही हुआ करते हैं। पाँचवें गुरू जी तक सेली-टोपी चली आती थी जबकि गुरू हरिगोबिंद महाराज जी मीरी तथा पीरी दो तलवारें पहनीं -

चउगिरद हमारै राम कार दुखु लगै न भाई ॥
सतिगुरु पूरा भेटिआ जिनि बणत बणाई ॥
राम नामु अउखधु दीआ एका लिव लाई ॥
अंग - 819

यदि हम जीवन को ऊँचा व सुच्चा रखेंगे, धर्माधीन रखेंगे, अवगुणों को छोड़कर गुणों को धारण करेंगे तो फिर हमारे जीवन की रौ चमकेगी।

हमारे जीवन में क्रान्ति आ जाएगी। फिर हमारे जीवन में कोई दुख नहीं रहेगा। फिर तो सबके लिए यही प्रार्थना निकलेगी कि -

(शेष पृष्ठ 41 पर)

नूरानी मिलाप

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

(श्री गुरू नानक देव जी महाराज जी के 2019 में 550 वर्षीय प्रकाश शताब्दी को समर्पित)

मै मूरख की केतक बात है कोटि पराधी तरिआ रे॥
गुरु नानकु जिन सुणिआ पेखिआ से फिरि गरभासि न परिआ रे ॥

पहिले बाबे पाइआ बखश दरि
पिछों दे फिरि घाल कमाई।

सतगुरू जी के नामकरण के ख्याल से बाबा मेहता कल्याण दास जी ने पण्डित हरदयाल जी को बुलाया। आपने पण्डित हरदयाल जी को बड़े ही सम्मानपूर्वक बैठाया और मेहता जी स्वयं भी साथ में पड़ी हुई चारपाई पर सुशोभित हो गए। इसके बाद सम्माननीय बाबा मेहता कल्याण दास जी कहने लगे, हे श्रेष्ठ ब्राह्मण जी! मुझे प्रभु जी ने पुत्र का उपहार प्रदान किया है, अतः आप से निवेदन है कि आप जी अपनी विद्या का प्रयोग करके इसके लग्न देखो तथा इसकी जन्मपत्री भी लिख दो। पण्डित जी बोले, बालक ने जो शब्द लेकर जन्म लिया है वही शब्द आप मेरे कानों में डालो। दाई को बुलाकर मुझे सही समय बतलाओ जिस समय बालक का प्रकाश हुआ। उस समय माता दौलता दाई जी ने बताया कि एक घड़ी दो पहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, जिस समय मेरे प्रियतम प्यारे का प्रकाश हुआ। मैंने यह अचरज पहली बार देखा इससे पहले मैंने इस आश्चर्य को कभी भी नहीं देखा। बहुत सारे बालकों ने मेरे हाथों में जन्म लिया है लेकिन यह बालक अत्यन्त विलक्षण है। बड़े मनुष्यों के भांति इसने हँस कर दर्शन प्रदान किए। सारा हिसाब किताब लगाकर पण्डित जी ने बतलाया कि ये शक्ति सम्पन्न अवतार पुरुष हैं। अब उस ब्राह्मण ने भी उस अवतारी बालक के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। वास्तव में तो सारी तलवंडी का भाग्योदय हो चुका था। सारी तलवंडी (वर्तमान ननकाना साहिब) भाग्यशाली हो गई थी, पण्डित जी के पूर्वजन्म के कर्मों ने भी छलांग लगाई फलस्वरूप उसने भी सच्चे पातशाह जी के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। बाबा मेहता कल्याण दास जी को उसने कहा कि बाबा जी! मुझे भी उस दिव्यात्मा के दर्शन करवाओ। बाबा जी ने दौलता दाई को आवाज दी कि बालक को पण्डित जी के पास लेकर आओ। माता दौलता जी अन्दर गए तथा माता तृप्ता जी को विनय की कि सच्चे पातशाह जी को बाहर पण्डित जी के पास लेकर जाना है। माता जी बोले बाहर शरद ऋतु होने के कारण ठंडक है कहीं सर्दी न लग जाए। पण्डित जी द्वारा बालक के दर्शन करने की इच्छा के बारे में सुनकर माता जी ने बालक (सच्चे पातशाह जी) का दौलता दाई के हाथों में दे दिया। दाई दौलता जी बालक सच्चे पातशाह जी को अपने हाथों में लेकर बाहर आते हैं। सच्चे पातशाह जी के मुख की शोभा कमल के पुष्प की भांति खिली हुई थी। दरअस्ल छोटे से शरीर में विशाल ज्योति बिराज रही थी। पण्डित जी बुद्धिमान थे, उन्होंने सारे अंगों व चिन्हों की पहचान की और दर्शन करते ही परमानन्द में पहुँच गए। वह उठ कर खड़ा हो गया और उसका मन प्रेम में पसीज गया। नमस्कार करके वह स्वयं को भाग्यशाली समझने लग पड़ा।

अब पण्डित ने सारे अंगों के सुन्दर लक्षणों का अध्ययन किया। लाल रंग के कोमल चरण कमल के फूल की पंखुड़ियों की भांति शोभा दे रहे हैं। आपकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी तथा कन्धे सुन्दर व ऊंचे हैं। आपके सुन्दर नाखून सुच्चे नगीनों की भांति हैं। हाथों की अंगुलियाँ एक ही जैसी लम्बी हैं, दाहिने हाथ में चवर का निशान है तथा बाएँ हाथ में छत्र अत्यन्त सुन्दर लग रहा है तथा आपकी कोमल कपोलें बहुत ही शोभायुक्त प्रतीत हो रही हैं। आपका माथा अर्द्ध चन्द्रमा के आकार का है। आपके दर्शन करने के बाद पण्डित जी ने कहा, देखो बाबा मेहता कल्याण दास जी! आपका पुत्र अत्यन्त सुन्दर है। इसके अन्दर बत्तीस शुभ लक्षण विद्यमान हैं। हाथ की तली ऊँची है, इनके पास धन बहुत आएगा लेकिन ये अपने पास में नहीं रखेंगे ये सर्वशक्ति सम्पन्न हैं। अब बाबा मेहता बोले, पण्डित जी! इसका नाम रखो। अक्षर सोच कर कोई अच्छा सा नाम रख दो।

पण्डित जी के कहने लगे, इसका नाम सोच विचार कर ही रखा जाएगा। चहुँ ओर खुशी का माहौल है। तेरहवें दिन पण्डित जी ने नामकरण किया। पण्डित जी ने कहा ये सबके सांझे हैं तथा ये सदैव हिन्दू व मुसलमानों को एक ही निगाह से देखेंगे। जो इनकी संगत करेगा वह भवसागर से पार हो जाएगा। पृथ्वी, पर्वत आदि समस्त प्राकृतिक शक्तियाँ इनके

अधीन होकर इन्हें रास्ता देंगी। इसीलिए मैंने इनका अति सुन्दर नाम 'नानक' (भावार्थ गुरू नानक देव जी) रखा है। इस नाम को हिन्दू व मुसलमान दोनों जपेंगे। इस 'नानक' शब्द के अर्थ इस प्रकार हैं कि पहला जो अक्षर 'न' है इसका अर्थ है 'पुरुष'। न+ा+नक का अर्थ है दुख तथा अन का अर्थ है - 'नहीं' इस प्रकार इसका अर्थ हुआ जिस पुरुष को दुख नहीं है और जो सदैव आनन्द स्वरूप है।

भाई नन्द लाल जी के अनुसार पहला 'न' कह रहा है कि आप नियामतों को बाँटने वाले हैं, दूसरे 'न' का अर्थ है 'नसीर' यानि कि जो मददगार हैं 'काफ' या 'क' का अर्थ है 'कबीर' यानि कि जो बड़े हैं, बीच वाले 'अलफ' का अर्थ है कि आप उस एक के हैं जो कि असीम है।

हर दो नूने पाकश नईमे नसीर।
अलफो मिआना अहद काफ आखरी का कबीर।
भाई नंद लाल जी

भावार्थ सच्चे पातशाह जी नियामतें बाँटने वाले, मददगार तथा बेसहारों के सहारा हैं। इस प्रकार से बाबा मेहता जी ने पण्डित जी को उपहारादि दिए और पण्डित जी आनन्दित होकर अपने घर को लौटे। लेकिन पण्डित जी रास्ते में यह विचार करते हुए जा रहे हैं कि मेरी आयु अधिक हो चुकी है क्या मैं भी श्री गुरू नानक देव जी की जगत लीलाओं को देख पाऊंगा? क्या मैं भी बढ़ते हुए सूर्य की रौशनी की भांति बालक सच्चे पातशाह के प्रताप को देख सकूँगा। इनके प्रकाश के आगे एक सूर्य का प्रकाश तो क्या करोड़ों सूर्यों का प्रकाश भी अन्धकारयुक्त ही है। सच्चे पातशाह जी का प्रकाश तो करोड़ों ब्रह्मांडों में है। मेरा बचपन बीत गया, जवानी भी बीत गई और अब बुढ़ापा आ गया है, मेरा उद्धार तो संगत के द्वारा ही हो पाएगा, इसलिए मैं विनती करूँगा कि मेरा भी उद्धार हो जाए और मैं भी सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाऊँ।

अन्तर्यामी बालक सच्चे पातशाह जी प्रत्येक व्यक्ति के दिल की बात को जानते हैं, वे मुझे भी उपदेश अवश्य करेंगे। वे जो कुछ भी मेरे ऊपर कृपा करेंगे मैं जब तक भी जिऊंगा उनके वचनों को मानता रहूँगा। यह मनोरथ मन में धारण करके वह पण्डित अपने घर पहुँच गया और मुक्ति के उद्देश्य से नाम सिमरन करने लगा। इस प्रकार से पण्डित जी पर प्रेम की वर्षा हुई। एक नामकरण वाला सांसारिक मिलाप, नूरानी मिलाप में परिवर्तित हो गया और शाश्वत अर्न्तात्मा का मिलाप हो गया -

पहिले बाबे पाइआ बखश दरि
पिछों दे फिरि घाल कमाई।

(पृष्ठ 39 का शेष)

नानक नाम चड़दी कला, तेरे भाणे सरबत का भला।

अब महाराज जी ने दसतार पर कलंगी सजा ली तथा आपने बाबा बुड्ढा जी को कहा कि अब सेली-टोपी को तोशेखाने में जमा करवा दो। आपने कलंगी सजाने के साथ-साथ मीरी व पीरी की दो तलवारें पहनीं और अपने सिक्खों को भी सन्त-सिपाही बना दिया। आपने कहा कि हम लोगों ने सदैव धर्म की नीति ही अपनानी है क्योंकि धर्म की नीति ही सदैव कायम रहती है।

महापुरुषों ने जब सन्त समाज का संविधान लिखा तो आपने उसमें यही लिखा कि सन्त समाज का न तो किसी राजनैतिक पार्टी के साथ हित हो और न ही किसी के साथ अहित हो। न तो समय की सरकार के विरुद्ध लड़ाई लड़ी जाए और न ही उनके विरुद्ध हथियार उठाए जाएं। यह तो प्रजातन्त्र है, इसमें आप अपने मताधिकार का प्रयोग करके किसी को भी राजगद्दी पर बिठा सकते हो। महापुरुषों से आशीर्वाद लेकर मनमोहन सिंह दस साल राज कर गया।

आप अपने मालिक स्वयं हो यदि आप अच्छे गुणों को धारण करोगे तो फिर आपके जीवन में ज्ञान का प्रकाश हो जाएगा। अब पूर्णमाशी का दिवस हम लोग क्यों मनाते हैं? इसलिए कि हमारे जीवन में भी रौशनी हो जाए, ज्ञान का प्रकाश हो जाए। अतः आओ! सम सब नाम अमृत के साथ जुड़ें -

अंम्रितु हरि हरि नामु है मेरी जिंदुड़ीए
अंम्रितु गुरमति पाए राम ॥
हउमै माइआ बिखु है मेरी जिंदुड़ीए
हरि अंम्रिति बिखु लहि जाए राम ॥ अंग - 538

इस प्रकार से -

गुन गावत तेरी उतरसि मैलु ॥
बिनसि जाइ हउमै बिखु फैलु ॥ अंग - 289

इसलिए विनती है कि महापुरुष द्वारा बताई गई युक्ति के अनुसार हम सब लोग नाम का सुमिरन करें। इससे होगा यह कि -

करि इसनानु सिमरि प्रभु अपना
मन तन भए अरोगा॥ अंग - 611

वाहिगुरु जी का खालसा
वाहिगुरु जी की फतहि

गुरबाणी अर्थ भण्डार

सन्त हरी सिंह जी रन्धावे वाले

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक मई, पृष्ठ - 47)

सिरीरागु महला 1 घरु 4

एकु सुआनु; दुइ सुआनी नालि॥

हे परमात्मा! ऐकु सुआन = एक लोभ रूपी कुत्ता तथा दुइ सुआनी = दो आशा व तृष्णा अथवा ईर्ष्या व द्वैष रूपी कुतिया को ये जीव अपने साथ लिए घूम रहे हैं।

भलके भउकहि; सदा बइआलि॥

भलके = सवेरे, सदा = हमेशा ही बहिआलि = व्यर्थ = भावार्थ लोभ रूपी कुत्ता तथा आशा, तृष्णा रूपी कुतिया पदार्थों के लिए भउकहि = भौंक रही हैं अथवा बहिआलि = स्वर्ग आदि की इच्छा के कारण लोभ रूपी कुत्ता तथा आशा व तृष्णा रूपी कुतिया भौंक रही हैं अथवा वासना रूपी बहिआलि = हवा चलने के कारण जीवों के पत्र आपस में रगड़ खाते हैं जिसकी वजह से जीव के हृदय में लोभ रूपी कुत्ता तथा आशा व तृष्णा रूपी कुतिया भौंक रही हैं। तथा–

कूड़ु छुरा; मुठा मुरदारु॥

जीवों ने कूड़ूत्त = झूठ रूपी छुरी, मन रूपी हाथ में पकड़ी हुई है और जो अन्य लोगों को मुठा = ठग कर खाना है यह मुरदार = मरे हुए जीवों का माँस खाना है।

धाणक रुपि रहा; करतार॥1॥

करतार = हे वाहिगुरू जी! ये संसारी जीव आपको भूलकर धाणक = भयानक रूप वाले बन गए हैं या बन रहे हैं।

मै पति की पंदि न; करणी की, कार॥

हे प्रभु! इन मै = ममता वाले जीवों ने पति = पति परमेश्वर की प्राप्ति वाले पंदि = रास्ते पर पैर न = नहीं रखा है अथवा पति = प्रतिष्ठा की पंदि = शिक्षा भी किसी से नहीं ली है तथा न ही शुभ कर्मों को किया है अथवा इन जीवों ने भक्ति रूपी करणी = कमाई की कार तो क्या करनी थी इन्होंने भक्ति भी नहीं की।

हउ बिगड़ै रुपि रहा; बिकराल॥

हउ = हंगता करके जीवों का रूपि = स्वरूप बिगड़ै = विगड़कर बिकराल = भयानक हो रहा है भावार्थ विषयों रूपी कोढ़ ने जीव का स्वरूप बिगाड़कर भयानक बना लिया है जिसके ऊपर माया रूपी मक्खी भिनभिनाती रहती है।

तेरा एकु नामु; तारे संसारु॥

हे प्रभु! हमारा तो यह निश्चय है कि आपका ऐकु = एक नाम ही संसार सागर से जीवों को पार कर देने वाला है।

मै एहा आस; एहो आधारु॥रहाउ॥

इसलिए मै = मुझे ऐहा = इस लोक में नाम की प्राप्ति की ही उम्मीद है तथा परलोक में भी ऐहो = इस नाम का ही आधारु = आश्रय है। रहाउ।

मुखि निंदा; आखा दिनु राति॥

हे प्रभु! सांसारिक जीवों का यह स्वभाव है कि दूसरों की निन्दा ही अपने मुखि से सदैव करते रहते हैं भावार्थ वे पराई निन्दा करके ही पराया भार अपने सिर पर उठाते हैं।

पर घरु जोही; नीच सनाति॥

पर घरु = पराए घरों को जोही = देखते हैं अथवा उधर झांकते हैं ताकि उन घरों के धन व पदार्थ उन्हें मिल सकें अथवा पराए घरों की स्त्रियों की तरफ बुरी निगाह से देखते हैं ताकि वे उन्हें मिल जाएँ। इस प्रकार के नीच कार्य करने के कारण वे निम्न जाति वाले हो रहे हैं अथवा सनाति = भूत प्रेतादि की भांति हो रहे हैं (सनाति = महाराष्ट्र या राजपूताने की सांसी आदि जातियों को सनाति कहा जाता है इसका भाव निम्न जातियों से है वैसे यहाँ पर मन्द कर्म करने वाले को सनाति कहा है)।

कामु क्रोधु; तनि वसहि चंडाल॥

काम क्रोधादि पाँच विकार रूपी चण्डाल जीवों के तनि = शरीर में बसते हैं।

धाणक रुपि रहा; करतार॥2॥

इस प्रकार हे करतार! यह सारा संसार आप जी के नाम को भूलकर धाणक = भयानक रूप धारण कर रहा है।

फाही सुरति; मलूकी वेसु॥

जीवों की सुरति तो लोगों को फाही डालने में लगी हुई है और ऊपरी तौर पर मलूकी = बादशाहों वाला सुन्दर व सन्तजनों वाला वेसु = लिबास धारण किया हुआ है।

हउ ठगवाड़ा; ठगी देसु॥

हउ = हउमै ने ठगवाड़ा = ठगने वाली होकर जीवों के हृदय रूपी देश को ठग लिया है।

खरा सिआणा; बहुता भारु॥

जीव स्वयं को तो अत्यन्त खरा मानते हैं लेकिन सिर पर पापों को बोझ उठाया हुआ है।

धाणक रुपि रहा; करतार॥3॥

हे करतार! यह सारा संसार आप जी के नाम को भूलकर धाणक = भयानक रूप धारण कर रहा है।

मै कीता न जाता; हरामखोरु॥

हे प्रभु जी! जीवों ने मै = हंगता के कारण आपके द्वारा किए गए उपकारों को तनिक भी नहीं समझा बल्कि वे तो हरामखोर = हराम का खाने वाले हो गए हैं अथवा हरामखोर = बेकार चीजों या वर्जित चीजों को खाने वाले हो गए हैं।

हउ किआ मुहु देसा; दुसटु चोरु॥

हे प्रभु जी! यह हउ = हंगता वाले जीव आगे परलोक में जाकर कौन सा मुँह दिखाएँगे क्योंकि ये तो दुष्टता करने, द्वैत करने वाले, कुरहतें करने वाले अथवा कुकर्म करने वाले चोर हैं अथवा प्रत्यक्ष चोर या नाम के चोर हैं -

नानकु; नीचु कहै बीचारु॥

सतगुरू नानक देव जी फुरमान करते हैं कि हे परमात्मा! ये उपर्युक्त जीवों की नीचता वाला विचार कथन किया है अथवा गुरू जी नम्रता सहित उच्चारण करते हैं कि हम नीचे से नीचे होकर इस विचार को कथन करते हैं।

धाणक रुपि रहा; करतार॥4॥29॥

हे प्रभु जी! यह सारा संसार आन्तरिक अवगुणों के कारण धाणक = भयानक रूप हो रहा है। आप ही अपनी कृपा करके जीवों का कल्याण करने की कृपा करो।

सिरीरागु महला 1 घरु 4
एका सुरति; जेते है जीअ॥
सुरति विहूणा; कोइ न कीअ॥

हे परमात्मा! जेते = जितने भी जीव तुमने पैदा किए हुए हैं वे ऐका = एक सुरति = अहंकार में ही दिखाई पड़ते हैं।

जेही सुरति; जेहा तिन राहु॥
लेखा इको; आवहु जाहु॥1॥

जेही = जिस प्रकार की किसी के अन्दर हंगता है तेहा = उसी प्रकार का तिन = उन्होंने राहु = रास्ता पकड़ा हुआ है। सबके सिर पर एक हंगता का ही लेखा है जिस कारण से वे आवागमन के चक्रव्यूह में फँसे रहते हैं भावार्थ जन्म लेते व मरते रहते हैं।

काहे जीअ; करहि चतुराई॥
लेवै देवै; ढिल न पाई॥1॥रहाउ॥

हे जीव! तुम चतुराई = चालाकी क्यों करते हो? वह परमात्मा जीवन को लेने व देने के समय जरा सी भी देर नहीं लगाता है।

तेरे जीअ; जीआ का तोहि॥

हे परमात्मा! ये सारे जीव जन्तु तुम्हारे ही हैं और इन सभी जीवों का मालिक भी तोही = तुम ही हो अथवा हे परमात्मा! ये जीव जन्तु सब तेरे हैं, तुम्हीं सारे जीवों का जीवन रूप हो।

कित कउ साहिब; आवहि रोहि॥

हे साहिब = मालिक इन समस्त जीवों के कर्म देखकर आप जी किसी पर भी कोप नहीं करते हो अर्थात आप तो कृपालु हो।

जे तू साहिब; आवहि रोहि॥

हे परमात्मा! यदि तुम रोहि = क्रोध में आ भी जाओगे

तो भी -

तू ओना का, तेरे ओह॥

तुम ओना = उन जीवों के मालिक हो और ओहि = वे सब तेरे ही बच्चे हैं अर्थात फिर भी तुम्हें उन पर कृपा करनी ही बनती है क्योंकि तुम उन जीवों के मालिक हो और वे तुम्हारे दास हैं।

असी बोल विगाड़; विगाड़ह बोल॥

सिद्धों के मुख के द्वारा कहते हैं कि हे प्रभु जी! हम तो बोल बिगाड़ = वचनों का विरोध करने वाले हैं भावार्थ मैं-मैं करके परमात्मा के प्रेम को अवरुद्ध कर लेते हैं इसीलिए हमारा नाम ही बोल बिगाड़ पड़ गया है अथवा हम जीव तो अहंभाव के अधीन ही बोलते हैं क्योंकि हमारा स्वभाव ही बोल बिगाड़ वाला है और इसीलिए हम योनियों में भटकते रहते हैं।

तू नदरी अंदरि; तोलहि तोल॥

लेकिन तुम तो जीवों को अपनी नदरी = दृष्टि के अन्दर तोलहि = तौलने वाले हो भावार्थ तुम जीवों के अच्छे व बुरे कर्मों को अपने न्याय रूपी तराजू में तौलने वाले हो अथवा हे कृपावान सतगुरू! जिनके ऊपर तुम नदरी = कृपा दृष्टि कर देते हो वे अपने हृदय के अन्दर तुम्हारे विचार को विचार कर लेते हैं।

जह करणी; तह पूरी मति॥

हे प्रभु जी! जह = जहाँ पर तुम्हारे नाम की कमाई है वह = वहाँ पर पूरी मति = बुद्धि है और वे कमाई वाले तत्व वेत्ते ही पूर्ण मति के स्वामी भी हैं भावार्थ बुद्धिमान हैं।

करणी बाझहु; घटे घटि॥

करणई बाझहु = नाम की कमाई के बिना जीव नुक्सान में ही पड़े रहते हैं अथवा घाटे के कारण ही वे टेढ़ी-मेढ़ी योनियों जैसे साँप, किरली, चूहे आदि में पड़े रहते हैं तथा गर्भ योनियों में आने का घाटा भोगते हैं अथवा उनके घटि = शरीर धिक्कारों रूपी मिट्टी उनके सिर में पड़ती रहती है।

प्रणवति नानक; गिआनी कैसा होइ॥

सिद्धों ने पूछा कि महाराज! आपके दृष्टिकोण से ज्ञानवान कैसा होता है? सतगुरू जी ने विनती करते हुए सिद्धों को कहा कि हमारी नजरों में गिआनी = ज्ञानवान इस प्रकार का होता है कि -

आपु पछाणै; बूझै सोइ॥

जो दृष्टा रूप होकर अपनी आत्मा द्वारा सबके अन्दर प्रभु को पहचाने तथा अपने स्वरूप को पहचानने वाले जो सतगुरू जी हैं सोइ = उन्हें उस परमात्मा के बारे में बूझै = पूछे भावार्थ जो गुरू जी से ज्ञान प्राप्त करके सबके अन्दर प्रभु जी को देखे और अपने आत्म स्वरूप को साक्षात्कार करे।

गुर परसादि; करे बीचारु॥

गुर परसादि = गुरू जी की कृपा के द्वारा सत्य व असत्य की विचार का निर्णय करे।

सो गिआनी; दरगह परवाणु॥4॥30॥

हे सिद्धपुरुषो! सो = वही सच्चा गिआनी = ज्ञानवान है तथा वह प्रभु जी की दरगाह में स्वीकार्य होता है।

'चलता'

आवश्यक निवेदन

रिन्युवल का चन्दा भेजने के लिए मेंबरशिप नम्बर (सदस्यता संख्या) तथा रिन्युवल तारीख (पुनर्नवीनीकरण तिथि) का ब्यौरा अवश्य दिया जाए तथा यह भी बतलाया जाए कि चन्दा, रिन्युवल के लिए है अथवा नई मेंबरशिप प्राप्त करने के लिए प्रेषित किया गया है।

यदि किसी प्रेमी पुरुष ने आत्म मार्ग मैगजीन के लिए चन्दा जमा करवाया हो और उसे मैगजीन न पहुँच पा रहा हो, तो उसे जमा करवाई गई रकम का रसीद नम्बर आदि लिखकर आत्म मार्ग कार्यालय से सम्पर्क करना चाहिए।

'आत्म मार्ग' एक धार्मिक मैगजीन है, इसके अन्तर्गत श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की वाणी छपी हुई होती है, इसलिए समस्त पाठक बन्धुओं से अनुरोध है कि कृप्या इसका प्रयोग रद्दी पेपर की भांति न किया जाए। यदि आप पुराने मैगजीन को रखना नहीं चाहते हैं तो उन्हें हमारे किसी भी वितरण केन्द्र पर सहर्ष वापिस कर सकते हैं।

नौवें रत्न - सन्त ईशर सिंह जी महाराज, राड़ा साहिब

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक मई, पृष्ठ - 58)

धुर से वापिसी

लन्दन में रहते हुए सन्त महाराज के सामने ही एक भयानक हादसा हुआ। एक दिन सेवा में लीन दम्पत्ति सरदार ईशर सिंघ इयाली की पत्नी ने बाहर हल्ला-गुल्ला सुना। जब बाहर पहुँची तो पता चला कि उनकी लड़की बुरी तरह जख्मी होकर बेसुध पड़ी है। कलसी साहिब ने फोन करके हस्पताल की गाड़ी मंगवाई। वह समझते थे कि लड़की अब बच नहीं सकेगी। पर सन्त जी महाराज ने फरमाया, *'प्रभु भावै बिन सास ते राखै'* लड़की को हस्पताल ले जाओ। डाक्टरों की राय थी कि केस बहुत ही नाजुक है, परन्तु निराश होने की कोई बात नहीं है। कम से कम एक रात यहाँ पर रहना ही पड़ेगा फिर हमारी बेटी को कोई नहीं मार सकता। मरना होता तो वहीं पर ही मर जाती। कलसी के घर से पत्नी ने पूरे विश्वास के साथ कहा था। दूसरे दिन आप्रेशन हुआ, टीके तथा दवाईयां देने के बाद बच्ची ने नेत्र खोले। तब वह बोल उठी, ''मम्मी, आप यहाँ क्या कर रहे हो? महाराज जी कहाँ हैं? उनके पास जाओ, मैं ठीक हूँ।''

सन्त महाराज जी ने केवल एक ही बात कही थी कि लड़की को और कुछ नहीं देना, सब्जियों का सूप और फलों का रस ही देना। जब कलसी जी की पत्नी ने कहा कि डाक्टर और नर्सें तो मांस तथा शोरबा अण्डा देने के लिये जोर दे रहे हैं, परन्तु लड़की ये चीज़ें धार्मिक ज़जबे के कारण खाने को तैयार नहीं थी। सन्त जी महाराज ने स्वत: ही फरमाया जिसने कि उस बच्ची को दरगाह से वापिस लौटाया है, वही सांसारिक जीवन की कठिनाईयों को भी दूर करेगा। तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, आप उसे मालिक की सुपुर्ददारी में छोड़ दो, वह समरथ है। हड्डियों का दर्द तथा अन्य दुख भी दूर हो जायेंगे। तीसरे दिन तो डाक्टर भी हैरान रह गये कि लड़की का स्वास्थ्य बिल्कुल अच्छा था और उसके दाँतों का दर्द, हड्डियों की चीखें तथा अन्य किसी प्रकार का कोई भी दर्द न रहा। इसका यह प्रभाव हुआ कि जिसने भी सुना, वही पावन पुरुषों के दर्शन करने के लिये भाग खड़ा हुआ, मानों मुर्दा रूहों में जान आ गई हो।

एक और अभिलाषा

सरदार चन्नण सिंघ नसराला, एक रबड़ की फैक्टरी में नौकर थे। उसने अपना सारा धन ऐशो-आराम में लुटा दिया। यदि टैक्स पूरा देता तो भी सभी कुछ कुर्क होकर भी कुछ नहीं बचता था। उसे नोटिस मिला और उसने झूठे ब्यान देकर बचने की कोशिश की परन्तु वह बच न सका।

उसने सरदार उजागर सिंघ की कोठी पर पहुँच कर प्रार्थना की, ''महाराज! मैं एक गुनाहगार हूँ परन्तु आगे के लिये तोबा करता हूँ, मुझ पर कृपा करो।'' सन्त महाराज ने कहा, ''इंगलैण्ड में झूठ बुरा है और लोग सत्य का व्यवहार करते हैं, फिर हम जो सद धर्म के पहरेदार हैं, वह तुझे झूठ बोलकर बच जाने का रास्ता कैसे बता सकते हैं?'' वह धाड़ें मार-मार कर रो पड़ा और बोला, ''महाराज! मैं बर्बाद हो जाऊँगा, कृपा करो। गुरू के लिये मुझे बचा दो।'' सन्त महाराज द्रवित हुए और कहने लगे, ''धर्म के मार्ग पर चलो फिर गुरू कृपा करेगा। आप सम्बन्धित अफसर के पास जाओ और सच-सच बता दो। फिर यदि सच बोलकर, सजा भी पाओगे तो, तुम अपनी ही दरगाह में और झूठे नहीं बनोगे।'' इसने पता नहीं मन में निश्चय होने के कारण या फिर और कोई चारा न देखकर, सन्त महाराज के वचनों पर पूरा भरोसा करके सच-सच जाकर बता दिया और अफसर को टैक्स की माफी या किश्तों में टैक्स अदा करने की अपील की। इसकी सारी बात सुनकर बड़े अधिकारी ने कहा, ''पता नहीं क्यों, मेरी ज़मीर कहती है कि मैं तुझे माफ कर दूँ, परन्तु कारण मैं भी नहीं जानता। जाओ, पिछला सारा हिसाब माफ और आगे के लिये सच बताने की आदत डालो।''

जब उस अफसर को इसे राय देने वाली तथा सत्य उपदेश देने वाली पावन महान आत्मा के बारे में पता चला,

तो उसने भी दूर से उन्हें प्रणाम किया।

इयाली के बारे में

सरदार प्रीतम सिंघ, सन्त महाराज के दीदारी दीवानों में से थे। वह हर समय हाज़िर रहते थे। सन्त महाराज की टहल सेवा के साथ-साथ वह हर समय वचन नोट किया करता था। चाहे वे वचन किसी के घर में चरण रखने के समय के होते या दीवान की समाप्ति पर, खास प्रेमियों के साथ जो वचन स्वाभाविक ही मुँह से निकलें, वे भी नोट करता रहता था। सन्त जी महाराज के बारे में उसे निश्चय था कि वह कोई महान कार्यवाही का प्रकटीकरण करने वाले हैं। जैसे सन्त जी महाराज ने टाऊन में दीवानों के आरम्भ के पश्चात एक दिन कुर्सी के समय किसी खास डाक्टर या फिर वकील का पता करने के लिये कहा।

1. यदि कोई अचानक मर जाये तो शरीर के बाहर जाने पर कोई रोक तो नहीं?

2. क्या प्राकृतिक मौत हो जाने के बाद भी डाक्टरी निरीक्षण और देख रेख जरूरी है?

3. बाहर ले जाने वाले शरीर का क्या प्रबन्ध करना पड़ता है?

4. बक्सा, जो शरीर को ले जाने के लिये बनाया जाता है, उस पर कितना खर्च आता है और वह कितने समय में तैयार हो जाता है?

5. लन्दन के चारों ओर महान सागर की खाई है, उस पर जल प्रवाह हो सकता है, परन्तु हिन्दुस्तान में संगतें दर्शन मिलाप से वंचित रह जायेंगी।

6. बिभौर साहिब, कलगीधर जी का तपोस्थान, जहाँ पर आप जी ने चौपई का उच्चारण किया था, उसके पास नदी का प्रवाह बहुत गहरा है। वहीं पर सन्त ज्वाला सिंघ जी महाराज हरखोवाल वालों का शरीर जल प्रवाह किया गया था। वह स्थान संगतों के लिये उचित रहेगा। सतलुज हरि के पत्तन में पानी बहुत कम है।

7. यदि आवश्यकता पड़ी तो चरणजीत आदि को दिल्ली से तार देकर बुलाया जा सकता है। वह स्वंय ही सारा प्रबन्ध कर लेंगे।

8. यहाँ से शरीर ले जाने के लिये सारे कागज़ात डाक्टरी सलाह मशवरा, डाक्टर प्रीतम सिंघ जी कर लेंगे, उन्हें सारी सूचना है।

9. डेरे के बारे में सोचने की जरूरत नहीं है। सन्त किशन सिंघ जी बैठे हैं, वह स्वंय सम्भाल लेंगे।

ये वचन इयाली साहिब ने नोट किये, जो अलग-अलग तारीखों के समय तथा फिर सन्त जी महाराज ने अपने ही निराले निर्लेप ढंग से कहे थे। वह सर्वज्ञ जानते थे कि कुछ होने वाला है। पर वह जब हुआ तो वह गरीब भी धोखा खा गया।

तेरह का मनहूस अंक

सरदार सौदागर सिंघ के घर पहुँच कर सन्त जी महाराज ने सारा रवैया, बातचीत तथा मनोवृत्ति ही बदल दी। आप कम से कम बोलते थे और यदि बोलते तो ऐसे फ़रमान किया करते थे।

''वाह! उसकी रचना। कोई आ रहा है, कोई जा रहा है, पर उस कर्ता की महानता में क्या फर्क पड़ जायेगा?''

एक बार बैठे-बैठे सहज ही कह उठे, ''छोटे सन्तों ने हमें कहीं भी जाने से नहीं रोका। वह इस बार बहुत ही उदास हो चुके थे। उनकी बातों से विरह तथा बिछोड़े की चीखें प्रत्यक्ष ही प्रतीत होती थीं।''

छठे महीने में, काफी दिन पहले डेरे से तार पहुँची कि सन्त भगवान सिंघ जी महाराज शरीर छोड़ गये। तार को पढ़कर सन्त महाराज काफी देर तक मौन रहे। उस समय उनके नेत्रों के सामने बड़े महाराज जी के अन्तिम दर्शन आ गये, नेत्र सजल हो उठे। मुख से निकल गया, ''वतन से दूर वतन की वफा के लिए। राख ली प्रभु ने मेरी बेबसी की लाज।''

फिर बोले, ''आप जल्दी कर गये। बारी तो हमारी थी परन्तु अब प्रतीक्षा करो, हमने भी पहुँच जाना है।''

उस समय जितने भी सज्जन बैठे थे, सभी द्रवित हो गये। हर एक चीखें मार-मार कर रोता था, परन्तु कर्ता की कुदरत तथा महापुरुषों की मौज में कौन दखल दे सकता था? यह विश्वास ही नहीं आ सकता कि अच्छा भला स्वास्थ्य है फिर अब क्या होगा? वुलवर हैपटन का तेरह दिन का कार्यक्रम

सिख जगत को बहुत महंगा पड़ा।

एक दिन एक प्रेमी ने बताया कि अंग्रेजी में तेरह का अंक बहुत ही मनहूस है। ये किसी भी स्थान पर तेरह का अंक नहीं रखते, होटल में तेरह नम्बर का कमरा नहीं रखते, जेल में तेरह नम्बर की बैरक नहीं होती, पलटन के नम्बर भी तेरह की गिनती में नहीं आते। ऐसा क्यों है? उसने बताया कि युसूह मसीह जिस समय अन्तिम रात व्यतीत कर रहे थे, उस रात उनके पास उनके अज़माये हुए साथियों की संख्या तेरह ही थी। उन सभी को उन्होंने कहा, ''दिन निकलते ही तुम मेरी हस्ती से इन्कार कर दोगे।'' तब एक सेवक ने कहा, ''क्या आप मुझ पर विश्वास नहीं करते?'' तब प्रकाश हुआ, आत्मा ने कहा, ''तू तीन बार लाहनतें भेजेगा और एक चेला मुझे बेच भी देगा।'' फिर ऐसा ही हुआ। दिन निकलने पर शाही फौजी दस्ते के टोले ने इन्हें घेर लिया और पूछा, ''बताओ युसूह कौन है?'' तब सभी ने कहा, ''हम तो उसकी सूरत से नावाकिफ हैं।'' फिर यहूद ऐस्करूती ने तीस रूपये लेकर उसकी तरफ इशारा करके, उसे गिरफ्तार करवा दिया था। वह बड़ा मुरीद पकड़े जाने के भय से, तीन बार युसूह पर लाहनत डाल कर, उस स्थान से चला गया। यही कारण है कि कोई यूरोपीय तथा फिर इसाईयों का पुजारी, तेरह के अंकों पर विश्वास नहीं करता।

परन्तु सन्त जी महाराज ने पूछा, ''युसूह कुर्बानी करके महान बना कि छोटा हुआ? उसके साथी यदि बराबर की कुर्बानी करते तो युसूह का धर्म, उसी समय ही प्रकट हो जाता। उसे फिर सुरजीत होने के लिये सौ साल पीछे न होना पड़ता। हमारे सामने यह महान पवित्र अंक है। जो तेरह नहीं, तेरा ही तेरा का जाप करवाता है और हउमै का त्याग बताता है। फिर उस अंक से शरीर मिटकर एक मात्र प्रीतम प्रभु का अस्तित्व शेष रह जाता है। फिर यदि हमने यहाँ पर तेरह दीवान सजाये हैं तो वह हस्ती से ऊपर तथा एक निरंकार की जात में समा जाने की याद हमें करवाता रहेगा।'' परन्तु जब संगत में बैठे प्रेमी इसकी व्याख्या को सुनकर घबरा उठे तो प्रकरण ही बदल दिया।

एक दिन बातें करते हुए जत्थे के संगी साथी तथा खास सेवक ने कहा, ''महाराज यदि कोई खास तकलीफ है, आप कोई और बात सोच रहे हो, तब हम आज ही सीटें बुक करवाते हैं। आप आज्ञा दें।'' सन्त महाराज हँस पड़े और फ़रमान किया, ''तू पागल है? जब तक समय, हालात, स्थान, तीन चीज़ों का मेल नहीं होता, यह असम्भव है कि मनुष्य शरीर की समाप्ति हो जाये। यह ठीक है कि शरीर को आपकी इच्छा अनुसार अधिक समय के लिए बचा सकते हैं। उसकी रज़ा न मानने वाले कई लोभी तथा इच्छाधारी मनुष्य भी हैं जो शरीर से अधिक पौण्डों के पुजारी हैं, फिर सन्त ने हर एक कामना, मन के ज़ज़बे और लोक प्यार, सभी कुछ देखकर ही निर्णय करना है। हमारी इस आज्ञा का हर सम्भव पालन हो कि हमारे शरीर का अन्तिम प्रवाह सतलुज की लहरों में हो और साथ ही करमसर की संगत को भी अन्तिम दर्शन करने का समय दिया जाये। हमने जो वायदा किया था कि इस बार के बाद कहीं नहीं जायेंगे वह पूरा हो गया। हमारी यह लम्बी और सदीवी यात्रा आरम्भ होने से बाहरी यात्राओं का अन्त हो जायेगा।''

इतना कहकर हँस पड़े और कहा, भाई वाह! दो घड़ी काल के साथ बातें करने लग पड़े थे और तो कोई बात नहीं है। इस बार के दौरे के समय सन्त जी महाराज का यह सख्त हुक्म था कि हर एक संगी साथी तथा प्रेमी, अमृत बेला में उठकर स्नान करे। फिर श्री जपुजी के पाठ उपरान्त, शब्द सुरत की महान मन्जिल द्वारा समाधि स्थित हो। दिन के समय भी यदि सुरत असली टिकाने पर स्थिर न रहे, तो अभ्यास नहीं हो सकता। तब कम से कम मूल मन्त्र की माला ही उस समय तक चलती रहे, जब तक वह दिन का भोजन खाकर विराजमान न हो जायें। वह स्थान जहाँ सन्त जी महाराज तथा उनके जत्थे के सिंघ निवास करते थे, सचमुच ही पावन गुरू धाम ही बनकर रह जाता था। कलसी साहिब के मकान से चलते समय आप जी ने फ़रमान किया –

करके रैन बसेरा कूंजा उड चलियाँ।

'चलता'

गिआनी मेहर सिंघ जी रचित पुस्तक
नौ रतन में से धन्यवाद सहित

गुरु नानक आगमन

(श्री गुरु नानक चमत्कार)

पद्म भूषण डा. भाई वीर सिंह जी

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक मई, पृष्ठ - 60)

मरदाना - पातशाह! जिस प्रकार से आपने कहा है यदि मन उसी प्रकार से अपने निजस्वरूप में टिक गया तो फिर जो आवश्यक, आवश्यकताओं की पूर्ति में जो कुछ कमी आ जाती है तो क्या वह स्वतः ही पूरी हो जाएगी?

गुरू जी - हाँ बहुत बार वह पूर्ति हो भी जाती है लेकिन यदि न भी हो तो फिर सुरति का (रूह का) उल्लास बचा रह जाता है और नाम की रौ तो चलती रह जाती है। वह जो आवश्यकताओं की पूर्ति वाली बात है वह तो मान लो पूर्ववत ही रह जाती है क्योंकि यदि हम सांसारिक बुद्धि का प्रयोग ही तथाकथित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते हैं तो भी कभी यह पूर्ति हो पाती है और कभी नहीं। दूसरी तरफ यदि हम अपने निज स्वरूप में स्थित होकर यदि अपने परम पिता से मिले रहें और आवश्यकताओं की तथातथित पूर्ति न भी हो पाई तो अध्यात्मिक जीवन ऊर्जा की रौ तो शेष रह जाती है न। यदि हम यह चाहते हैं कि हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति होनी ही चाहिए तभी हम इस दिशा में आगे बढ़ेंगे तो फिर हम नाम में लगने वाली बात नहीं है यानि कि फिर यह प्रेम या प्रेम-भक्ति वाली बात न होकर केवल आदान-प्रदान वाला सौदा या व्यापार मात्र ही है।

मरदाना - पातशाह! तो फिर क्या अपनी बुद्धि या उद्यम का प्रयोग नहीं करना चाहिए?

गुरू जी - फिर तुमने वही बात कह दी है जो कि सोई हुई सुरति वाले कहा करते हैं। अक्ल का प्रयोग करो, उद्यम करो, क्यों न करो। मूर्खता और आलस्य की प्रशंसा कब का जाती है? हम तो सोई हुई सुरति वाले पुरुषों की बात कर रहे हैं जो टिकाव में जाकर आत्म चाव के घर जाते हैं, अथवा जिनके अन्दर उल्लास भरा हुआ होता है वे संसार के अन्दर अपने जीवन को किस प्रकार से सुखी बनाते हैं। अब तुम अपनी इस बात को ही सोचो कि तुमने अपने बुद्धि व उद्यम का प्रयोग कर लिया है लेकिन उससे बना कुछ भी नहीं और उल्टा नाम के उल्लास को समाप्त कर लेना। अब यदि कोई और बुद्धि व उद्यम चल सकता है चलो लो लेकिन अपने अन्दर के उल्लास को सम्भाल कर रखना। यदि तुम्हारे अन्दर का उल्लास समाप्त न हुआ तो समझो कि तुम शाश्वत जीवन में जी रहे हो। तुम गहरी सोच से सोचो कि तुम जिस जीवन से चिपके रहना चाहते हो उसने तो रहना नहीं है लेकिन जो उल्लास का जीवन है, वह शाश्वत जीवन है, वह सदैव रहेगा। यदि बुद्धि और उद्यम की दौड़ समाप्त हो गई तो फिर नाम को सम्भालो और उल्लास के घर में खिल जाओ और आराम से बैठ जाओ। 'हरि सिउ समाई कर अंदर'। अन्दर की समाई के द्वारा निजत्व स्वतः ही मालिक की चरण-शरण में चलता जाता है और तुम इसी मौज में बैठ जाओ। देखो कि आगे रात आ रही है, यदि कुछ खाने के लिए आ गया तो परमात्मा की कृपा है और यदि कुछ नहीं आया तो भी उसी रंग में बैठे रहो। कम से कम साईं से बेमुख तो नहीं होओगे और एक वस्तु और अमूल्य वस्तु तो तुम्हारे पास रह जाएगी न! क्यों भाई बात समझ में आई या नहीं?

मरदाना - धन्य है आपकी सहनशक्ति जो कि आप मेरे जैसे मूर्ख के साथ समय काटते हो और समय को काटते ही नहीं अपितु प्यार करते हो तथा मेरे जीवन को उल्लासमयी बनाने का प्रयास करते रहते हो। धन्य है आपका 'नाम' आपका 'उल्लास' व आपका वह परम तत्व, जिसका आभास उल्लासमयी हो जाने के बाद ही प्राप्त हो पाता है अथवा जब मन को उस परम तत्व की हाजिरी में हाजिर कर दिया जाता है तभी उसका आभास हो पाता है। अच्छा अब आप कृपा करो ताकि आपका लगाया हुआ यह पौधा हमेशा लहलहाता रहे। यह कह कर मरदाना 'सत्य करतार' कहकर बैठ गया और उसने अपना ध्यान 'नाम' के साथ जोड़ लिया तथा कुछ समय के बाद उसे बैठे हुए ही नींद आ गई। नींद के अन्दर उसका शरीर स्वतः ही शिथिल पड़ गया और जिस चद्दर को उसने ओढ़ा हुआ था उसी चद्दर में लिपटे हुए ही वह सो गया।

जब तीन पहर रात रह गई तो फिर मरदाने की आँख खुल गई। अब वह क्या देखता है कि नाम स्वतः ही चल रहा है और सुरति सुखी है तथा पाला थोड़ा-थोड़ा महसूस हो रहा है लेकिन ज्यादा नहीं है। फिर जब उसने आँखें खोलकर आकाश की तरफ देखा तो कहने लगा ऐ मन! उठ! रबाब बजा, कीर्तन कर, समय हो गया है। जब वह उठा तो क्या देखा कि पास में ही धुनी लगी हुई है और आग लट-लट कर जल रही है तथा पास में ही कुछ लकड़ियाँ पड़ी हुई हैं। वह देख कर आश्चर्यचकित हो गया। फिर जब उसने देखा कि गुरू जी का आसन तो पड़ा हुआ है, लेकिन आप स्वयं वहाँ नहीं हैं। थोड़ी देर बाद गुरू जी भी वहाँ पर आ गए।

मरदाने ने पूछा, महाराज जी! यह आग कहाँ से आ गई? गुरू जी हँस कर बोले कि जिस परमात्मा के नाम के साथ जुड़कर टिक गए थे उसी की कृपा है। उसी ने किसी के दिल में यह ख्याल पैदा कर दिया होगा, फलस्वरूप वह आग भी जला गया होगा और लकड़ियाँ भी रख गया होगा।

मरदाना - गुरू जी! यह सब कैसे हुआ?

गुरू जी - मरदाना! तुम तो थके हुए थे, फलस्वरूप थोड़ी ही देर में सो गए। अभी मैं तो जाग ही रहा था कि वन में से कोई शिकारी, जो कि 'गोहों' को मारकर अपना जीवन यापन करने वाला था, आया। उसके सिर पर लकड़ियों का एक गट्ठर था तथा हाथ में एक 'दीनी' जल रही थी। उसने जब हम लोगों को यहाँ पर बैठे हुए देखा तो उसने अपने लकड़ियों के गट्ठर को नीचे उतार कर रख दिया और बहुत प्यार में आकर कहने लगा, साधू जी! आप लोग रात कैसे गुजारोगे? क्योंकि धूनी नहीं है? मैंने कहा, कोई बात नहीं बीत जाएगी। उसने कहा, साधू जी! मैं धूनी लगा दूँ? मैंने कहा, तुम परिवार वाले हो, आज तुम्हें शिकार भी नहीं मिला है, इसलिए तुमने इन लकडिडयों को बेचकर ही अन्न वगैरह लेना होगा। वह कहने लगा, हम लोग निम्न कोटि के लोग हैं, हमारी आजीविका भी निम्न कोटि की है लेकिन साधू जी! मेरे मन में बार-बार यह ख्याल आता है कि आप लोग सारी रात बाहर जाड़े में किस प्रकार से रहोगे? मेरे घर जलावन है और दो चार दिन का राशन भी है, इसलिए मेरी माँ, पत्नी और बच्चे भी भूखे नहीं रहने वाले हैं, इसलिए आप हमारी विनती को स्वीकार करने की कृपा करो। उस समय हमने कहा कि यदि तुम्हारे मन में इतना प्रेमातिरेक है तो फिर तुम धूनी लगा दो। मरदाना! हृदय के अन्दर प्रेमातिरेक का उत्पन्न होना उच्च कोटि के जीवन को जन्म देने वाला हुआ करता है। मरदाना! इस प्रकार से उसने धूनी लगा दी और शेष लकड़ियाँ भी पास में रख दीं तथा स्वयं दूसरी 'दीनी' जलाकर तथा कुछ 'दीनियाँ' यहाँ रख कर तथा कुछ दीनियाँ अपने साथ लेकर चला गया।

मरदाना - पातशाह! इतने सीधे-साधे मनों के अन्दर भी आपकी करामात काम कर जाती है। आपका सुन्दर दिल धन्य है, आपका साईं प्यार भी धन्य है। आपका साईं भी धन्य है और आपके कार्य भी धन्य हैं। आपका साईं भी धन्य है और आपके कार्य भी धन्य हैं। पातशाह! आप उस प्यार वाले व्यक्ति पर मिहरवान हो गए इसलिए आप बहुत ही नरम दिल वाले हो। हाय मेरी नींद? मैं क्यों सो गया? मैं भी उस सीधे व सरल हृदय वाले हृदय का प्रेम देख लेता, उसका स्वयं को न्यौछावर करने वाला दान, आपके द्वारा उसे स्वीकार करना व अपनी कृपा के द्वारा उसका उद्धार करना देख लेता।

गुरू जी - मरदाना! तुम बहुत थके हुए थे और अच्छा हुआ कि तुम सो गए थे।

मरदाना - पातशाह! यह बतलाओ कि उसके ऊपर आपकी दिव्य कृपा हुई या नहीं? क्योंकि आप तो बहुत ही प्रेमपूर्ण हृदय वाले हो?

गुरू जी - मरदाना! उसका प्रेम लेखे में पड़ गया है अब वह साईं की तरफ लग जाएगा, भजन करेगा और किसी जन्म में बड़ा महापुरुष होकर बहुत सारे अन्य लोगों का भी उद्धार करेगा।

मरदाना - तुम्हारी कृपादृष्टि भी धन्य है। मुझे क्या पता था कि जो मुझे लकड़ियाँ नहीं मिलीं हैं तो इसने एक कारण बन जाना है, किसी के मन में प्रेमातिरेक को उत्पन्न करने का और उसके उद्धार होने का तथा उसके माध्यम से और भी बहुत सारे लोगों का उद्धार हो जाना है। पातशाह! मुझे भी आप रजा में राजी रहने का सबक सिखा दीजिए और अपने इस कीर्तनिए या रबाबी का भी गुरुमुखों की भांति उद्धार कर दीजिए।

गुरू जी - मरदाना! धन्य करतार कहो तथा अभी तुरन्त कीर्तन का रंग लगा दो।

योगियों को तो रात में ही पता चल गया था कि पीपल के नीचे धूनी लग गई है। भले ही उन्होंने आग नहीं दी थी। अब नित्य प्रतिदिन के कीर्तन ने यह बतला दिया था कि यहाँ कोई दिव्य कीर्तन होता रहता है तथा उन्हें यह भी ज्ञान हो गया था कि सूखे पीपल को कोपलें फूटनें लग पड़ी हैं, फलस्वरूप वह हरा-भरा हो रहा है। योगी इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे। पहले तो वे आग-बबूला हो गए थे कि यह कौन सा साधू आ गया है जो कि हम लोगों की भांति कानों में कुण्डल भी धारण नहीं करता है और वेशभूषा से साधू ही प्रतीत होता है। इसलिए वे समझते थे कि हम लोग इसकी धूनी न लगने देकर ही इसे यहाँ से भगा देंगे और एक जगह तो ऐसा भी लिखा है कि योगीजन, गुरू जी की धूनी ही छीन कर ले गए थे लेकिन अब जब उन्होंने पीपल को हरा होते हुए देखा तो वे घबराए कि यह तो कोई कलावान पुरुष है, जिसके बैठने से सूखा पेड़ हरा हो गया है। वे सब इस कारण से और भी अधिक परेशान थे कि यह योगी नहीं है लेकिन फिर भी करामाती है? इसे येन-केन-प्रकारेण अपने पन्थ में ले आना चाहिए ताकि इसके द्वारा किए गए तप का हमें भी लाभ पहुँच सके। यह विचार करके वे गुरू जी के पास आकर बैठ गए और उन्होंने सबसे पहला प्रश्न किया कि ऐ बालक! तुम किसके चेले हो? तुमने दीक्षा किससे ली है, यानि कि किस सर्राफ ने तुम्हें तराशा है? किसकी कसौटी पर तुम खरे उतरे हो? उस समय गुरू बाबा जी ने उत्तर दिया -

मेरा मन ही तौलने वाला तराजू है, मेरा चित्त ही बाँट है, वाहिगुरू जी की सेवा ही सर्राफ है अर्थात तौलने व परखने

(शेष पृष्ठ 54 पर)

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब सर्वोत्तम

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मि. चै. ट्रस्ट

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक मई, पृष्ठ - 60)

साधना बहुत बड़ी भारी चीज है। अभ्यास करने से जो प्राप्त होता है, जो सुख और शान्ति प्राप्त होती है, वह सुख और शान्ति बाहरी उपकरणों से नहीं मिल सकती बल्कि साधना से मिलती है। आप सबसे ज्यादा सुरक्षित अभी नहीं हैं। आप सोच रहे हैं कि अभी हम सुरक्षित हैं लेकिन नहीं हैं। जिस वक्त आप साधना करेंगे, सबसे ज्यादा सुरक्षित उस समय होंगे। मैं आपको एक किस्सा सुनाता हूँ - मैं मुम्बई में था, जब भूकम्प आया सारा ब्लैक आऊट हो गया। दोनों धार **horizontal** और **vertical**, पहले धक्का लगा, तो मैं बैठे-बैठे आगे खिसका, फिर धक्का लगा तो मैं दो चारपाई साथ-साथ थी, एक से दूसरे में चला गया। तो आँख बन्द किया तो मैंने कहा, 'भाई क्यों तंग कर रहे हो?' गृहस्थियों के घर ठहरने में यही नुकसान है हमको। चारों तरफ से शोर मच रहा था - भागो-भागो, चारों तरफ अन्धकार छाया हुआ था। लोग भाग रहे थे। तब मुझे ख्याल आया, यह तो भूकम्प आ गया है, तो मैंने आँख बन्द कर ली और अपने जप ध्यान में लग गया। जप और ध्यान करते हुये शरीर छूट जाए, इस से बढ़कर और क्या चीज है, इससे बढ़कर कौन सी मृत्यु हो सकती है - कोई नहीं हो सकती और परमात्मा का भय नहीं है और मृत्यु का भय हो जाये। इससे बड़ी मूर्खता क्या हो सकती है? जो ईश्वर से भय न खाये, और मौत से भय खाये, उसका जीवन तो निरर्थक ही है। मुझे तो जब कभी भी कोई कष्ट होता है, तब प्रतीत होता है, महसूस होता है, एक मानव और शरीर-धारी बात कर रहा हूँ, मैं तो उसका नाम चुपचाप बैठकर जपने लगता हूँ, बाहरी सब चीजें बन्द करके जपने लगता हूँ। मेरे सब काम उसके नाम पर होते हैं। इतनी आपने तारीफ की कि स्वामी राम ये हैं, स्वामी राम वो हैं, कुछ नहीं है। वह तो तिनका भी नहीं हैं। कुछ है! ईश्वर का नाम, भगवान का नाम, गुरू का दिया हुआ नाम। उस पर जितना भी विश्वास आप करोगे, उतना ही कल्याण होगा, उसी में आपका जीवन सफल होगा। मैं आपको कोई शिक्षा देने, उपदेश देने नहीं आया हूँ, मैं तो आपको अपने अनुभव की बात कह रहा हूँ भाइयो! मैं यहाँ पर कोई विद्वता की बात या चर्चा करने नहीं आया हूँ। नाम कैसे जपना चाहिए - अब देंखे इसमें।

कबीर साहिब जिस वक्त शरीर छोड़ने लगे तो सब जो है वहाँ पर ये खड़तालें बजाने लगे 'एक राम घट घट में बैठा। एक राम दशरथ का बेटा। एक राम ने जगत पसारा। एक राम है सबसे न्यारा।' बोले बताओ तुम किस राम को जप रहे हो। एक राम ने जगत पसारा, उन्होंने कहा तुम भी बाहर जाओ। अब बच गये दो - एक राम घट घट में बैठा और एक राम है सबसे न्यारा। उसने कहा, जो तुम घट-घट में बैठने वाली बात करते हो, बात तो सही है लेकिन यह पहली स्टेज है, पहली सीढ़ी है, एक राम है सबसे न्यारा - जो असंग और अलिप्त है, उत्तम प्रकृति का यही है। हो सकता है वह दूर बैठा हो, उसको कहा, बेटा तुम नजदीक आ जाओ। हमने जो शिक्षा दी, तुम्हीं ने समझा इसको। अब हम अन्तर्ध्यान होते हैं और वे गायब हो गये। ऐसे ही जप की भी बात है। यह बोध हो जाना चाहिए कि जिसका हम जप कर रहे हैं, वह अपने अन्दर ही है या अपने से परे है - इसका बोध होना चाहिए। अब इस पर एक मत बताते हैं। गीता में कहा है - 'ईश्वर सर्वभूतानां हृदयं स्थित्म।' हे अर्जुन! ईश्वर सब जगह तो है, यह तो पक्की बात है, लेकिन तू पहले अपने दिल में देख। अगर अपने अन्दर नहीं देखता तो तुझको यह ज्ञान नहीं हो पाएगा। अब जैसे बाईबल में भी कहा है कि अपने अन्दर ही तुम ईश्वर को देखो। जैसे कि जिस समय जीसस क्राइस्ट को क्रास पर खड़ा करके उसको **torture** किया जा रहा था तो उसने क्षमा करने के लिए तो नहीं कहा, कि मुझे माफ कर दो। शरीर से जब आदमी अलग हो जाता है - साधना करते-करते, तो सारा विश्व ही उसका शरीर हो जाता है, उसका एक छोटा सा शरीर तो रहता नहीं। परमहंस राम कृष्ण जी को एक बार गले में कैंसर हो गया था।तो विवेकानन्द र ोने लगे, उनके जितने भी शिष्य थे वे भी रोने लगे कि 'गुरूदेव! हम लोग रोज खाना खाते हैं, और आप नहीं खा पाते, हमें बहुत दुःख होता है।' वे मुस्कुराए और बोले, 'अरे मैं नहीं खा सकता, तुम लोग तो खा रहे हो। मैं इसी में खुश हूँ कि सब लोग खा रहे हैं।'

साधना से शारीरिक कष्ट, कष्ट नहीं रहता। इसीलिए हर किसी को साधना करनी चाहिए और साधना प्रभु का अंग है - जप। कोई साधना संसार में ऐसी नहीं जो जप से प्रारम्भ न हुई हो। **in the beginning, there was a word**

and word was in God and God was in word. संसार की प्रारम्भिक अवस्था में वह शब्द था। क्या था? तुलसी दास जी ने बहुत माथा पच्ची की इसके ऊपर कि वह शब्द क्या हो सकता है? आखिर उन्होंने कहा, वह शब्द, जिसको उल्टे भी और सीधे भी कहा जाए वही शब्द हैं। तो उन्होंने कहा, ऐसी कौन सी बात है, कौन सी चीज है तो उल्टे भी और सीधे भी, जैसे भी हो, एक ही अर्थ निकलता हो। तो उन्होंने कहा, 'अहं-सह-सो अहं।' श्वास में अगर आप ध्यान से सुनोगे तो दो शब्द निकलते हैं। श्वास जो है हमारा, एक गायन करके गाती है। जैसे आप शब्द गाते हो ना, वैसे श्वास में भी एक गायन चलता है। उस गायन में दो स्वर आपको सुनाई देते हैं, एक स्वर होता है जो सांस ले रहे हो, 'सो ...' और जब श्वास छोड़ते हो तो होता है 'अंहु ...।' इन शब्दों का सम्बन्ध कुण्डलनी से है। आपके शरीर के अन्दर, आपको मूलाधार चक्र में एक शक्ति सोई हुई है। तो कहते हैं कि श्वासों की धौंकनी से उसको जागृत किया जाता है और सब चक्करों का भेदन करके वह फिर अपने संहस्रार में अपने पति देव से एक हो जाती है। ऐसा ग्रन्थों में उसका वर्णन आया है। तो एक पर्वत की शिखा है, उस पर्वत की शिखा को जाने के लिए हजारों मार्ग हैं। और सबसे सरल मार्ग है - नाम जप करना। सब कार्य करते हुये संसार के सब क्रिया कलाप करते हुये, मन ही मन, आराधना करते रहना चाहिए। इससे अधिक महान सुरक्षा कवच कोई नहीं है।

अब हमने कहा कि अगर हमने सिर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी सीधी रखनी सीख ली तो फिर सूक्ष्म बुत्त प्राप्त फिर भी होते रहते हैं, **body switch** करती है, हिलती जुलती है जो **involuntary control** स्वैच्छा के विरुद्ध कहते हैं अंग्रेजी में **voluntary control in involuntary system** वह नहीं हो पाता, वह **twitching** होती रहती है, उस से भी मन जप से हटता है क्योंकि अभी साधना की अवस्था है। लेकिन उस वक्त यह हो कि कुछ भी हो, कैसे भी हो, किसी भी दशा में कुछ भी हो जाए, हम वह करेंगे। 'जातक पिटयका' एक ग्रन्थ है जिसमें बुद्ध का जीवन उनके जो नजदीक के शिष्य थे, उनकी वार्तालाप है। तो उसने बुद्ध से पूछा कि, 'महाराज! हम में तो शक्ति नहीं है, जितनी आप में है। आप बताइये कि यह हो कैसे गया कि तलवार लेकर के अंगुली मार डाकू, आपको मारने के लिए आया, तो उसकी तलवार वहीं रह गई, यह बात क्या है? आप तो कहीं और देख रहे थे, कैसे हुआ?' वह मुस्करा दिए, तो आनन्द जो उनका शिष्य था, उसने कहा, गुरुदेव! मैं तो आपका बेटा हूँ मुझे तो बताइये। उन्होंने कहा, 'बेटा, ऐसा है, कई चीजें व्याख्या रहित होती हैं, जिसको आदमी वर्णित नहीं कर सकता, बोल ही नहीं सकता, उसका वर्णन कर ही नहीं सकता। जैसे हम मिठाई खा रहे हैं, अगर आप हम से पूछें, स्वामी जी! मीठे का क्या स्वाद है, तो मैं तो यही कह सकता हूँ ना, आहा! कितना अच्छा है, लेकिन उससे मिठाई के स्वाद का वर्णन तो नहीं हो पाता।' जो लोग, जो सन्त, प्रभु कृपा से अनुभव करते हैं, वे आखिर में मौन हो जाते हैं, बोल ही नहीं पाते। इसलिए सत्य कहा है -

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।

रामचरित मानस सुन्दर कांड

संसार भर के सब सुखों को एक तरफ तराजू में तोल दीजिए और सत्संग को दूसरी तरफ, सत्संग भारी निकलेगा और सब सुख बेकार निकलेंगे। हमेशा सन्तों के सत्संग में, संग में रहने से मनुष्य के विकार धुल जाते हैं। आपने सुना होगा - बाल्मीकि कितना महान डाकू था? संसार के मशहूर डाकुओं में था - बाल्मीकि, लेकिन महान सन्त बन गया, ऐसे ही **soul on the way to domestication** उसका परिवर्तन हो गया, महान डाकू आदमी था, महान बदमाश आदमी था। इसी संसार में, इसी जन्म में सम्पूर्ण जीवन बदल जाता है, अगर आदमी सत्संग में रहे तो। तो दो चीजों का सार हमने पाया - सत्संग में रहें और जप करते रहें। जो साधक लोग जप को गहराई में ले जाना चाहते हैं, मैं उनसे यही कहूँगा कि समय निधारिंत कर लें जिस समय कुछ भी हो, कैसा भी हो, वह समय किसी दूसरे काम को न दें। केवल ध्यान और जप के लिये करें - पहली चीज। दूसरी चीज - एक आसन ऐसा साधना में लायें कि उसको बार-बार परिवर्तन न करें, जब आप ध्यान करें। ऐसे ही जीवन के लिए कुछ बाहरी जीवन में सत्संग और आन्तरिक जीवन में नाम जप का अभ्यास बनाए रखने से कुछ और की आवश्यकता ही नहीं है, और दूसरी चीज की क्या आवश्यकता है? मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आप लोगों के ऊपर गुरू की महान कृपा है कि आप सिक्ख धर्म का अनुसरण करते हैं, सिक्ख परिवार में पैदा हुये हैं, सिक्ख धर्म को मानते हैं, सिक्ख धर्म के अनुसार चलना, यह अब आपका कर्तव्य है। अब भगवान चाहेगा, और आप लोग आशीर्वाद देंगे, अगले वर्ष इसी स्थान पर सम्पूर्ण गुरू ग्रन्थ साहिब अंग्रेजी में आपके सामने रखूंगा।

सन्त जी का (सन्त वरियाम सिंह जी का) और विशेष कर अपनी माँ का (बीबी रणजीत कौर जी) का जो हर दो मिनट में मुझे खिलाती हैं, मैंने कहा मेरे पेट में कोई जगह नहीं है, बोले, थोड़ा सा और खा ले, किन शब्दों से - क्योंकि मैंने तो अपनी माँ देखी ही नहीं, बचपन में ही मैं तो अनाथ हो गया था, वह जो प्यार मुझे देती हैं, उस प्यार का भी मुझे कहीं और जगह अनुभव नहीं हुआ। आप महान भाग्यशाली हो - कितने सरल, शुद्ध-चित्त, सत्यता से जीवन व्यतीत करने वाले सन्त और इतनी अच्छी माता मिल गई और क्या चाहिए?

गुरू गोबिंद सिंह रचित - जफरनामा

सन्त निरंजन सिंह नूर

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक मई, पृष्ठ - 56)

(104) मूल

अगर बर यूक आयद दहो दह ह्जार।
निगाहबान उ रा शवूद किरदगार।

अर्थ - बर यक = एक ऊपर, निगाहबान = रखवाला, दहो दह = एक लाख, शवद = होता है, किरदगार = भगवान।

अनुवाद

जे इक उते चड़ आवे दल बेपनाह,
ताँ राखा है उस दा दो आलम दा शाह।

यदि एक मनुष्य पर बेतहाशा लुटेरे टूट पड़ें तो उस मनुष्य का रखवाला भगवान स्वयं ही होता है -

(105) मूल

तुरा गर नजर ह्सत लशकर व जर।
किह मा रा निगा असत यजदाँ शुकर।

अर्थ - जर = दौलत, मारा = मुझे, शुकर = धन्यवाद।

अनुवाद

जे तेरी निगाह फौज, दौलत ते है,
ताँ मेरी नजर शुकर, खिदमत ते है।

यदि तुम्हारी नजर फौजों तथा खजाने पर है तो मुझे केवल परमात्मा का धन्यवाद करने का गौरव है।

(106) मूल

कि उ रा गरुर असत बर मुलको माल।
व मा रा पनाह असत यजदाँ अकाल।

अर्थ - ऊरा = उसे, मुलको माल = हुकूमत तथा धन, पनाह = शरण, अकाल = अमर।

अनुवाद

जे तैनूं घमंड मुलक ते, माल ते,
मैं जीदाँ हाँ उहदी पनाह, भाल ते।

बादशाह को अपनी हुकूमत तथा धन-दौलत पर घमंड है लेकिन मुझे परमात्मा की शरण में आने का गौरव है।

(107) मूल

तू गाफिल मशौ इह सिह-पंजी बराए।
कि आलम बगुजरद सरे जा बजाए।

अर्थ - मशौ = न हो, सिह-पंजी = तीन-पाँच दिन (अर्थात थोड़े समय के लिए ही), आलम = जगत, जा बजाए = अपनी अपनी जगह पर।

अनुवाद

तूं भुल ना कि जुग चार दिन दी सराँ,
ते हर शै दिसे थाँएं थाँईं रवाँ।

तुम इस बात से गाफिल मत होओ क्योंकि यह संसार चार दिनों का मेला है और संसार अपनी अपनी बारी से चलता जा रहा है।

(108) मूल

बर्बी गरदिशि बेवफाईइ जमाँ।
कि बगजशत बर हर मकीनो मकाँ।

अर्थ - गरदश = चक्र, जमां = जमाना, बगुजशत = गुजरता है, मकीनो मकां = जगह के निवासी।

अनुवाद

ना भुल काल-चक्र बड़ा बेवफा,
इह बेतरस जिथे पिआ, लै गिआ।

इस बेवफा समय के चक्र को देखो, इसका वार प्रत्येक जगह व प्रत्येक व्यक्ति पर चलता है।

(109) मूल

तूं गर जबर, आजिज खुराशी मकुन।
कसम रा ब तेशह तराशी मकुन।

अर्थ - जबर = जबरदस्ती, मकुन्न = न करो, आजिज = गरीब, बतेशा तराशी = तेसे (बहोला) के साथ काटना।

अनुवाद

सता ना ग्रीबाँ नूं जे जोर है।
कसम तोड़ है धाड़वी चोर है।

यदि तुम शक्तिशाली हो तो गरीबों को तंग मत करो और अपनी कुरान की खाई हुई कसम को तेसे (बहोला) के साथ मत काटो अर्थात अपने वचन को भंग मत करो।

(110) मूल

चु ह्क यार बाशद चिह दुशमन कुन्द।
अगर दुशमनी रा बसद तन कुन्द।

अर्थ - चूँ = जब, हक = भगवान, चिह = की, कुनद = करना, बसद = सौ।

अनुवाद

जिनाँ दा बचाअ रब दी दोसती,
उनाँ दा विगाड़ू की सै दुशमणी।

(शेष पृष्ठ 54 पर)

स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार
(Inspired Thoughts of Swami Ram)

डा. स्वामी राम जी

अनुवादक - शमशेर सिंह 'कोमल'

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक जून, पृष्ठ - 62)

मैडिटेशन आन्तरिक शक्ति प्रदान करती है

विज्ञान की सारी उपलब्धियाँ जो भी आज संसार में हैं, सारे आराम जो भी संसार में हैं, उन्हें केवल एक साधन के रूप में देखना चाहिए। वास्तव में तो वे कुछ प्राप्ति के साधन हैं न कि स्वयं में ही कोई प्राप्ति है। इसके प्रति एक ठीक रुचि व एक ठीक रवैया रखना अत्यावश्यक है। आज का मनुष्य जिन बीमारियों से घिरा हुआ है वे सब उसकी स्वनिर्मित है जैसे कि ब्लड प्रैशर, अल्सर, सिरदर्द, उदासी, निरुत्साह। इन समस्त बीमारियों का कारण मन में है। जब मन को मैडिटेशन के द्वारा सुधार लिया जाता है तो फिर मैडिटेशन एक चिकित्सा बन जाती है और वह तुम्हें बहुत सारी बीमारियों से बचा लेती है। जब तुम मन तथा उसके परिवर्तन को मैडिटेशन के माध्यम से नियन्त्रित कर लेते हो तो फिर तुम आन्तरिक शान्ति को जी सकते हो और अपने कामकाज को पूरी सहजता के साथ कर सकते हो। केवल मैडिटेशन के द्वारा ही तुम अपने आन्तरिक खजाने को ढूँढ़ सकते हो, अपने आन्तरिक गुणों की संयुक्त क्रिया को जान सकते हो सृजनात्मक बनने के लिए, गतिशील बनने के लिए मैडिटेशन अत्यावश्यक है। मैडिटेशन करने वाला कभी भी समस्याओं से घबराता नहीं है, दौड़ता नहीं है। वह संसार के प्रति आकर्षित भी नहीं होता है और लालच में भी नहीं आता है। जीवन में चाहे कुछ भी होता रहे, मैडिटेशन करने वाला अटल रहता है। चाहे अच्छा हो या बुरा, वह निर्लिप्त रहता है, मैडिटेशन करके तुम संसार का व लोगों का भला कर सकते हो।

मैडिटेशन करने में सबसे अधिक परेशानी हउमै की है। जिसे हउमै का त्याग आ गया उसे तो मानो सर्वाधिक ज्ञान प्राप्त हो गया। मेरे साथ एक बार यह अनुभव हुआ जिससे कि हउमै का ज्ञान प्राप्त होता है। गाड़ी में मेरे साथ एक नौजवान बैठा था और एक वृद्ध स्वामी भी बैठा हुआ था। उस युवा ने वृद्ध स्वामी को प्रश्न किया कि श्री मान जी! क्या आपने अपने क्रोध पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया है? वह कहने लगा, हाँ, बिल्कुल और यह तो बहुत ही सरल है। मुझे तो कभी भी गुस्सा नहीं आता है और न ही मेरे अन्दर कोई हउमै ही है, इसके साथ ही मेरा अपनी भावनाओं पर पूरा नियन्त्रण है लेकिन वह युवा अपनी बात पर अड़ा रहा कि क्या सचमुच तुम्हारे अन्दर गुस्सा नहीं है? हउमै नहीं है? वह बार-बार अपने सवाल को दोहराता रहा। वह पूछता रहा कि क्या सचमुच तुम्हारा, अपने मन पर, कथनी व करनी पर पूरा नियन्त्रण है? अन्त में उस बुजुर्ग स्वामी को गुस्सा आ ही गया और वह चीखते हुए बोला, तुम चुप कर जाओ अन्यथा मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा।

प्रत्येक मनुष्य का असली रूप, किसी अनोखी व विचित्र घटना में ही उभर कर सामने आता है। वास्तव में यह समय तुम्हारे स्वयं के लिए भी एक परीक्षा की घड़ी होती है, स्वयं को जांचने-परखने की घड़ी होती है। यदि तुम अपने चेतना केन्द्र के लिए सचेत हो तो फिर तुम इस प्रकार की घटना को बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से सम्भाल सकते हो। चेतना केन्द्र को प्रत्येक समय स्थिर रखने के लिए मैडिटेशन की नितान्त आवश्यकता है। वास्तव में आन्तरिक शक्ति, बाह्य शक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँची है, जिनके अन्दर की शक्ति अधिक होती है, वे अटल रहते हैं, अशान्त नहीं होते हैं।

इस बात को मैं एक घटना से जोड़कर बताना चाहता हूँ। एक बार एक बहुत ही पहुँचे हुए स्वामी जी के प्रवचन सुन रहा था, वे मैडिटेशन पर ही बोल रहे थे। एक श्रोता उठा और कहने लगा, श्रीमान जी! यदि मैं यह कहूँ कि आप महा बेवकूफ हो तो आप अवश्य ही अशान्त हो जाओगे। स्वामी जी कहने लगे, नहीं, मैं अन्य लोगों की सलाह को इस प्रकार से नहीं मानता हूँ। मैंने शान्त रहना सीखा है, आराम में रहना सीखा है।

मैडिटेशन करने वाला संकेत को समझता है। संवेग, इच्छा, सोच आदि सब कुछ को समझता है। इस प्रकार का मनुष्य प्रत्येक समय व प्रत्येक स्तर पर सचेत रहता है। मैडिटेशन तुम्हें सत्य के साथ, यथार्थ के साथ निपटने के लिए

तैयार करती है। मैडिटेशन तुम्हें द्वन्द्व से एकता की तरफ ले जाती है। मैडिटेशन अनेकता में एकता है। बहुत बार मैडिटेशन को नींद में ले जाने वाले अभ्यास के तौर पर देखा जाता है जो कि गलत है। वास्तव में दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है। नींद में ले जाना तो केवल एक सुझाव है, सलाह है, जबकि मैडिटेशन में तो तुम सत्य का अनुभव करते हो। जब तक हम नाम, रूप व आकार देखते हैं तो इसका भाव यह है कि हम एक सुझाव के प्रभाव के नीचे हैं। वास्तव में तो सारी मानवता ही बाहर के हालात के सुझाव से प्रभावित है। हमें तो किसी अन्य सुझाव की जरूरत ही नहीं है। नींद में ले जाना तो तुम्हें केवल ऊपर-ऊपर से ही ठीक कर सकता है। नींद में ले जाने का कोई भी तरीका तुम्हें जागृत नहीं कर सकता है, ज्ञान का प्रकाश नहीं कर सकता है। **Hypnosis** तुम्हें गाढ़ी नींद में तो ले जा सकता है लेकिन नींद ज्ञान का प्रकाश नहीं कर सकती है। जब एक बेवकूफ सोता है तो वह बेवकूफ ही उठता है लेकिन एक बेवकूफ जब गहरी मैडिटेशन में जाता है और जब वह मैडिटेशन से बाहर निकलता है तो वह एक ज्ञानी और जागृत होकर बाहर निकलता है।

बहुत बार साधक यह पूछते हैं कि मुझे मैडिटेशन सीखने के लिए कितनी देर लगेगी? उस समय मेरा एक स्पष्ट जवाब होता है कि एक अन्धेरे कमरे को प्रकाशित करने में कितना समय लगता है? यदि तुम्हारे पास रौशनी है, प्रकाश है तो फिर तुम अन्धकार को दूर कर सकते हो। यदि तुम अपना समय बरबाद न करो, अपने समय को तैयारी करने में प्रयोग करो तो फिर तुम अपने अस्तित्व की गहराइयों में जा सकते हो। यदि तुम प्रबल इच्छा सहित चेतन होकर मैडिटेशन के लिए समय निकालोगे तो फिर तुम्हारी बहुत सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। थोड़ा सा निकाला हुआ समय धीरे-धीरे तुम्हारी आदत बना देता है। जब एक आदत पक जाती है तो फिर तुम्हारा मन अपने आप ही पड़े हुए मार्गों पर चलने लग पड़ता है जो लोग मैडिटेशन करते हैं, यदि उन्हें पूछो तो तुम्हें पता चलेगा कि मैडिटेशन का घंटा सर्वोत्तम होता है। सभी जीव अपने अनजानपन के कारण, अपनी अज्ञानता के कारण गल्तियाँ कर बैठते हैं। मैडिटेशन हमें अपनी गल्तियों से भिज्ञ करवाती है। इतना ही नहीं वह हमें दोषी होने से व अपराधी होने से मुक्त करवाती है। मैडिटेशन हमें, हमारी अच्छी, बुरी आदतों से भी भिज्ञ करवाती है।

एक और प्रश्न जिसे साधक पूछते हैं वह है मार्ग दर्शक या गुरू के बारे में। आज के साधक गुरू को एक अलौकिक जीव समझते हैं। इस प्रकार की मूर्ति जो कि उनके अपने विचारों की बनी हुई है। गुरू वह है जो कि अपनी अर्न्तात्मा व अन्तःकरण से सोचता है, बोलता है, कर्म करता है, क्रिया करता है। दरअस्ल सर्वोत्तम ऊँचे मनुष्य के रूप में वह गुरू है जो अभ्यास करता है, जिसका अपना अनुभव है जो तुम्हें ज्ञान मार्ग पर निरलेप होकर तुम्हारा मार्गदर्शन करता है। ग्रन्थ बताते हैं कि उठो! गहरे अज्ञान की निद्रा से जागो! सचेत होओ! अपनी आत्मा की आवाज सुनो! तथा अपने मन की चालाकियों व फरेबों को मत सुनो। पृथक पृथक मार्गों को जानने की कोशिश मत करो बल्कि एक ही मार्ग को पकड़ कर, उस पर पूरी निष्ठा सहित व पूरे भरोसे सहित, आगे चलते रहो, बढ़ते रहो।

'चलता'

(पृष्ठ 49 का शेष)

वाला है। अपने हृदय में मैं उस मालिक को तौलता हूँ और इसी अभ्यास में मेरा चित्त लीन रहता है। मेरा गुरू, वह (परमेश्वर) स्वयं है क्योंकि मैंने तौलने वाला, तराजू व बाँट उसी को समझा है। जन सामान्य का मन अँधा है, इसकी दिशा नीची है और यह अपने आप में टिकता नहीं है बल्कि परदेसियों की भांति भटकता रहता है अर्थात यह सदैव संकल्पों और विकल्पों के चक्रव्यूह में फँसा ही रहता है। अतः आप लोग बतलाओ कोई अन्य मार्ग इस मन को टिकाने का है बजाए इसके कि वह सदैव परमात्मा के ध्यान में ही लीन रहे? यही मेरा मार्ग है, यही रास्ता है। गुरू जी ने इसमें भाव यह बतलाया है कि मेरा गुरू अकलापुरुष है तथा मेरा मन साधक व जिज्ञासु है -

कउण तराजी कवणु तुला — *अंग - 730*

'चलता'

(पृष्ठ 52 का शेष)

यदि परमात्मा तुम्हारे साथ है तो दुश्मन तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है भले ही वह तुमसे कितने भी गुणा अधिक बैर कमाए।

(111) मूल

खसम दुशमनी गर हजार आवुरद।
ना यक मूइ उ रा आजार आवुरद।

अर्थ - खसम = दुश्मन, आवुप्द = करे, यक मूई = एक बाल, आजार = दुख।

अनुवाद

जे लूख-वार वी शतरु हमला करे,
ना रूब-पूज दा वाल विंगा करे।

परमात्मा की शरण में आए व्यक्ति का दुश्मन बाल भी बांका नहीं कर सकता है, भले ही वह हजारों प्रकार की दुश्मनी क्यों न करे।

रतवाड़ा साहिब में महापुरुषों के प्रवचनों का कार्यक्रम

प्रत्येक रविवार रतवाड़ा साहिब

(12.00 बजे से 4.00 बजे तक)

पूर्णमाशी – 27 जुलाई, दिन शुक्रवार।

(रात्रि 07.00 बजे से 10.00 बजे तक)

संक्रान्ति – श्रावण, 16 जुलाई, दिन सोमवार।

(प्रातः 5.30 बजे से 8.00 बजे तक)

अमृत संचार – महीने के प्रथम रविवार को गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहिब में सुबह 11.00 बजे होता है।

INTERNET MEDIA AND LIVE TELECAST

Website : www.ratwarasahib.in

Website : www.ratwarasahib.org

Instagram : RATWARA SAHIB (https://instagram.com/ratwara.sahib/)

You Tube : https://www.youtube.com/user/babalakhbirsingh

Facebook : https://www.facebook.com/ratwarasahib1

Twitter : https://mobile.twitter.com/ratwarasahib13

Live Audio Link 1 - https://www.awdio.com/Ratwara Sahib

Live Audio Link 2 - https://mixlr.com/ratwara-sahib

E-mail :- sratwarasahib.in@gmail.com

Contact - 9569455861, 9417912900, 9814612900

आवश्यक निवेदन

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यूिवल या दसवंद पंजाब एंड सिंध बैंक की किसी भी शाखा द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में भेजी जा सकती है।

भारत (INDIA)

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यूिवल भेजने के लिए -

VGRMCT / Atam Marg Magazine
S/B A/C No. 12861000000003 RTGS/IFSC Code - PSIB0021286
Branch Code - C1286

दसवंद भेजने के लिए -

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust
SB A/C No. 12861100000005 RTGS/IFSC Code - PSIB0021286
Branch Code - C1286

विदेश (ABROAD)

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust
Punjab National Bank SB A/C No. 0779000100179603
RTGS/IFSC Code - PUNB0077900 Branch Code - 077900

यदि चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा राशि भेजनी हो तो ऊपरलिखित खातों अनुसार **Gurdwara Ishar Parkash Ratwara Sahib, P.O. Mullanpur Garibdas. Distt S.A.S. Nagar (Mohali) - 140901** पर भेजने की कृपा करें। यदि **Online** राशि भेजनी हो तो राशि की जानकारी देते समय अपना नाम व पूरा पता मोबाइल नं. +91-98889-10777 पर **SMS** भेजें जी।

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि यदि आपने अभी तक आत्म मार्ग मासिक पत्रिका की सदस्यता ग्रहण नहीं की है तो आप कृप्या अधोलिखित प्रारूप पत्र को भरकर सदस्यता ग्रहण करने की कृपा करें। यदि आप पहले से ही सदस्यता ग्रहण कर चुके हैं, तो पुनर्नवीनीकरण हेतु इस प्रारूप पत्र के साथ आवश्यक चैक/ड्राफ्ट "VGRMCT/ATAM MARG MAGAZINE" के नाम पर प्रेषित करने की कृपा करें।

Subscription form ✓ ☐ नई सदस्यता ☐ पुनर्नवीनीकरण ☐ आजीवन सदस्यता

within India

Subscription Period	By Ordinary Post/Cheque	By Registered Post/Cheque
1 Year	Rs. 300/320	
3 Year	Rs. 750/770	
5 Year	Rs. 1200/1220	
Life	Rs 3000/3020	

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 $
Europ	50 Euro	500 Euro
Australia	80 Aus $	800 Aus $

जनवरी ☐ फरवरी ☐ मार्च ☐ अप्रैल ☐ मई ☐ जून ☐ जुलाई ☐ अगस्त ☐ सितम्बर ☐ अक्तूबर ☐ नवम्बर ☐ दिसम्बर ☐

नाम/Name पता/Address...

....

..............Pin Code............. Phone .... E-mail :...........................

सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल, रतवाड़ा साहिब

समय - सुबह 9.30 बजे से 2.00 बजे तक (रविवार से शुक्रवार)

डाक्टरों का समय - सुबह 10.00 बजे से 12.00 बजे तक

दूरभाष नं. 98786-95178, 92176-93845

डा. का नाम	विशेषज्ञ	दिन
1. डा. जसबीर कौर	जनरल मैडिसन	सोमवार
2. डा. गुरिंदर कौर कंग	एम. डी. (गाइनी)	सोमवार
3. डा. कुलदीप सिंह कंग	एम. डी. (आँखों के विशेषज्ञ)	सोमवार
4. डा. हरबंस सिंह	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	मंगलवार
5. डा. तेजिंदर सिंह	जनरल मैडिसन	मंगलवार
6. जे.पी.आई. अस्पताल मोहाली के डाक्टर	आँखों के विशेषज्ञ	मंगलवार
7. श्री माइकल जी	एक्स-रे विशेषज्ञ	मंगलवार तथा वीरवार
8. डा. भगत सिंह मक्कड़	जनरल मैडिसन/ई.एन.टी./ब्लॅड शूगर आदि	बुद्धवार
9. डा. जे. एस. गुजराल	जनरल मैडिसन/शिशु रोग विशेषज्ञ	बुद्धवार
10. डा. आर. एस. संधू	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	वीरवार
11. डा. संतोष अनेजा	जनरल मैडिसन	वीरवार
12. डा. जसप्रीत सिंह	एम.डी.एस. (दाँतों के विशेषज्ञ)	वीरवार
13. डा. एस. के. बांसल	जनरल मैडिसन	शुक्रवार
14. डा. बरिन्दर सिंह	जनरल मैडिसन तथा त्वचा रोग विशेषज्ञ, एअरो स्पेस मैडिसन	शुक्रवार
15. डा. भगत सिंह मक्कड़	जनरल मैडिसन/ई.एन.टी./ब्लॅड शूगर आदि	रविवार
16. डा. जिंदल	जनरल मैडिसन	रविवार
17. डा. गुरप्रीत कौर गिल	होम्योपैथिक	बुद्धवार
18. बीबी हरनीत कौर	फिजियोथैरेपिस्ट	सोमवार से शुक्रवार

-: लैबोरेटरी टैस्ट तथा अन्य सुविधाएँ :-

1. खून टैस्ट, 2. सारे खून सैल काउंट टैस्ट 3. ब्लड शुगर टैस्ट, 4, किडनी टैस्ट, 5. लीवर टैस्ट, 6. लिपिड परोफाइल टैस्ट, 7. थायराइड टैस्ट, 8. हिमोग्लोबिन टैस्ट, 9. पेशाब टैस्ट, 10. स्टूल टैस्ट, 11. ई.सी.जी., 12. एक्स-रे (क्ष-किरण)

सारे लैबोरेटरी टैस्ट आधे शुल्क पर किये जाते हैं तथा मरीज को दवाई मुफ्त दी जाती है।

जरूरी सूचना

प्रत्येक रविवार को अस्पताल खुला रहेगा। समय 11.00 से 1.00 बजे तक। प्रत्येक शनिवार को अस्पताल बन्द रहेगा।

मई महीने से पूर्णमाशी के समागम दिन की जगह रात को हुआ करेंगे। समय शाम 7.00 बजे से रात 10.00 बजे तक।

विश्व गुरमत रूहानी मिशन चैरिटेबल ट्रस्ट

के मुख्य संस्थापक प्यारे महापुरुष सन्त बाबा वरियाम सिंह जी द्वारा लिखित व प्रकाशित पुस्तकें

यह पुस्तकें श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल रूप में स्पष्ट करके जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। इनकी विषय वस्तु के रूप में नाम, सेवा व स्मरण की विधियों को प्रस्तुत करते हुए जन साधारण की भाषा का अत्यन्त सरल, मार्मिक व हृदयस्पर्शी प्रयोग किया गया है। यह दुर्लभ पुस्तकें, प्रत्येक जिज्ञासु व साधक के लिए एक अमूल्य निधि के रूप में हैं। अध्यात्मिक सुख व शान्ति प्राप्त करने हेतु आप इन्हें प्राप्त करके स्वयं पढ़ें तथा अन्य श्रद्धालुजनों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। यह सभी पुस्तकें गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहब में आपकी सेवार्थ उपलब्ध हैं –

हिन्दी	
1. सुरति शबद मार्ग	70/–
2. किव कुड़ै तुटै पालि	35/–
3. बात अगंम की – सात भागों में	400/–
4. किव सचिआरा होइए – भाग पहला	35/–
5. किव सचिआरा होइए – भाग दूसरा	65/–
6. किव सचिआरा होइए – भाग तीसरा	100/–
7. होवै आनन्द घणा	30/–
8. बाबाणियाँ कहानियाँ	50/–
9. सुरतिआं उपजै चाउ	40/–
10. सर्व प्रिय गुरू गोबिंद सिंह जी	10/–
11. भक्त प्रहलाद	10/–
12. अमृत फुहार	10/–
13. अगम अगोचर का मार्ग	70/–
14. जपुजी साहिब सटीक	15/–
15. अमर ज्योतियाँ	15/–
16. अमर गाथा	100/–
17. वैशाखी	10/–
18. साजन चले प्यारिआ	10/–
19. अविनाशी ज्योति – भाग 1	90/–
20. रूहानी गुलदस्ता	70/–
21. चउथै पहरि सबाह कै	60/–

English Version	Price
1. Baisakhi	Rs. 5/-
2. How Rend The Veil of Untruth	Rs. 70/-
C. Discourses on the Beyond -1	Rs 50/-
4. Discourses on the Beyond -2	Rs. 50/-
5. Discourses on the Beyond -3	Rs. 50/-
6. Discourses on the Beyond -4	Rs. 60/-
7. Discourses on the Beyond -5	Rs. 60/-
8. The way to the imperceptible	Rs. 80/-
9. The Lights Immortal	Rs. 20/-
10. Transcendental Bliss	Rs. 70/-
11. How to Know Thy Real Self-(Vol-1)	Rs. 80/-
12. How to Know Thy Real Self-(Vol-2)	Rs. 80/-
13. How to Know Thy Real Self-(Vol-3)	Rs. 110/-
14. The Dawn of Khalsa Ideals	Rs. 10/-
15. A Glimpse of His Holiness - Baba ji	Rs. 5/-
16. Divine Word Contemplation Path	Rs. 150/-
17. The Story of Immortality	Rs. 260/-
18. Why not Contemplate the Lord	Rs. 200/-

ऊपरलिखित पुस्तकें आप जी मनीआर्डर, चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा रतवाड़ा साहिब से मंगवा सकते हैं या ट्रस्ट के अकाउंट में राशि जमां करवा कर मोबाइल नं. 9417214391, 9592009106, 9417214379 पर सूचित कर सकते हैं। **Bank Name : Pb & Sind Bank, A/c Name. VGRMCT/Atam Marg Magazine, S/B A/C No. 12861000000003, RTGS/IFSC Code - PSIB0021286, Branch Code - C1286**

रतवाड़ा साहिब में 17 जून के गुरमति समागम के दौरान पहुँचे पृथक-पृथक वक्तागण

ट्रस्ट के संस्थापक ब्रह्मलीन श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह महाराज जी की जीवन संगिनी
परम पूज्या व सम्माननीय सन्त माता (बीजी) रणजीत कौर जी के शत वर्षीय
जन्म दिवस के उपलक्ष्य में
समस्त संगत को कोटि-कोटि मुबारकबाद
दिनांक : 8 अगस्त को
गुरमति समागम
रतवाड़ा साहिब में
समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 4.00 बजे तक
1. ट्रस्ट द्वारा हिन्दी व पंजाबी प्रकाशित पुस्तकें अर्द्धमूल्य पर उपलब्ध होंगी
2. गुरू के लंगर निर्विघ्न रूप से जारी रहेंगे
3. अमृत संचार प्रातः 11.00 बजे आरम्भ हो जाएगा

How to become true to the Creator

Sant Waryam Singh Ji
English Translation: Prof. Beant Singh

(Continued from P. 75, issue June, 2018)

Echoing the same thought, Guru Sahib also says –

'Devotion to the Preceptor ever brings true joy,
And egoism's possessiveness is restrained.
Through the Preceptor's teaching is the darkness lifted,
And the adamantine doors stand opened.'

ਗੁਰ ਸੇਵਾ ਤੇ ਸਦਾ ਸੁਖੁ ਪਾਇਆ॥
ਹਉਮੈ ਮੇਰਾ ਠਾਕਿ ਰਹਾਇਆ॥
ਗੁਰ ਸਾਖੀ ਮਿਟਿਆ ਅੰਧਿਆਰਾ
ਬਜਰ ਕਪਾਟ ਖੁਲਾਵਣਿਆ॥

The extremely adamantine doors of hope and doubt of Maya are opened with the Guru's Word or teaching. The Guru's holy Word or hymn destroys egoism completely, and when egoism is destroyed, then only the one Lord God is realized to be pervading every being. By the Guru's grace both body and mind are made pure. The pure holy Name enables man to attain to the pure and immaculate Lord God, as per the *Gurbani* edict –

'Anyone lodging God in the self after overthrowing egoism,
Ever is devoted to the holy Preceptor's feet.
By the Master's grace are his mind and self rendered pure,
And he ever meditates on the Name immaculate.' P. 110

ਹਉਮੈ ਮਾਰਿ ਮੰਨਿ ਵਸਾਇਆ॥
ਗੁਰ ਚਰਣੀ ਸਦਾ ਚਿਤੁ ਲਾਇਆ॥
ਗੁਰ ਕਿਰਪਾ ਤੇ ਮਨੁ ਤਨੁ ਨਿਰਮਲੁ
ਨਿਰਮਲ ਨਾਮੁ ਧਿਆਵਣਿਆ॥

Guru Sahib has described such traders in the Name Divine as blessed. So, in this body-shop, the mind is the trader and that is to trade in truth by imbibing the Guru's teaching –

Refrain: This mind is the trader of the shop in this body.

ਧਾਰਨਾ – ਇਹ ਮਨ ਵਣਜਾਰਾ ਜੀ,
ਤਨ ਵਾਲੀ ਹਟੜੀ ਦਾ

But revered holy congregation! instead of engaging in the trade of truth, the mind gathers heaps of Maya-poison. What are the acquisitions of *Maya*? It is an illusion. Engaged in accumulating riches, one day, he departs leaving everything behind. None carries anything with him when he departs. But the sins and evils, he has committed while accumulating riches, he does carry with him. Giving account of every sinful deed in the Divine Court, he is bound to weep and wail, but who will listen to his weeping and crying? Becoming purblind, he has wasted his human incarnation. So, Guru Sahib says –

'Enjoying revelments, man himself becomes a heap of ashes and his soul passes away.
When the worldly man dies, a chain is thrown round his neck and he is led away.
There, his good and bad acts are read out to him, and seating him, his account is explained to him.
When thrashed, he finds no place of shelter,

but none hears his bewailings now.
The blind man has wasted away his life.'
P. 464

ਆਪੀਨੈ ਭੋਗ ਭੋਗਿ ਕੈ
ਹੋਇ ਭਸਮੜਿ ਭਉਰੁ ਸਿਧਾਇਆ ॥
ਵਡਾ ਹੋਆ ਦੁਨੀਦਾਰੁ
ਗਲਿ ਸੰਗਲੁ ਘਤਿ ਚਲਾਇਆ ॥
ਅਗੈ ਕਰਣੀ ਕੀਰਤਿ ਵਾਚੀਐ
ਬਹਿ ਲੇਖਾ ਕਰਿ ਸਮਝਾਇਆ ॥
ਥਾਉ ਨ ਹੋਵੀ ਪਉਦੀਈ
ਹੁਣਿ ਸੁਣੀਐ ਕਿਆ ਰੂਆਇਆ ॥
ਮਨਿ ਅੰਧੈ ਜਨਮੁ ਗਵਾਇਆ ॥

This trader in the shape of sentient being had come to trade in truth, but caught in *Maya* (Mammon), involved in worldly affairs, adopting notions of 'mine' and 'thine', 'friends' and 'strangers' remains bereft of it by turning his back upon his Supreme goal. Well! even if this *'jeev'* (sentient being) is told that his supreme goal is to trade in the Name Divine, as has been advised by Guru Sahib, he does not heed –

'Make thy mind the ploughman, thy actions cultivator's vocation,
Modesty the water and thy body the field.
In this field sow devotion, make content the levelling-plank,
And maintain the garb of humility.
By devotion and grace shall this crop sprout–
Where it grows, that home you shall see blessed.' *P. 595*

ਮਨੁ ਹਾਲੀ ਕਿਰਸਾਣੀ ਕਰਣੀ
ਸਰਮੁ ਪਾਣੀ ਤਨੁ ਖੇਤੁ ॥
ਨਾਮੁ ਬੀਜੁ ਸੰਤੋਖੁ ਸੁਹਾਗਾ
ਰਖੁ ਗਰੀਬੀ ਵੇਸੁ ॥
ਭਾਉ ਕਰਮ ਕਰਿ ਜੰਮਸੀ
ਸੇ ਘਰ ਭਾਗਠ ਦੇਖੁ ॥

About the attainment of material riches, Guru Sahib says –

'Friend! worldly wealth accompanies us not.
Lure of wealth the world has bewitched –
Only rare ones realize this.' *P. 595*

ਬਾਬਾ ਮਾਇਆ ਸਾਥਿ ਨ ਹੋਇ ॥
ਇਨਿ ਮਾਇਆ ਜਗੁ ਮੋਹਿਆ
ਵਿਰਲਾ ਬੂਝੈ ਕੋਇ ॥

Only money, riches and properties are not called *'Maya'*. Except the Name Divine, all the visible world is *'Maya'* (illusion) in which man remains entangled all the time. His state is like that of a lame ass caught in a marsh. The lame ass can be rescued, if some merciful beloved devotee of God throws a rope round its neck and pulls it out slowly and slowly. We come to a holy congregation, hear discourses, the mind trades in truth. Sometimes it rises and sometimes it falls and it does not feel at home in the true and holy congregation. It creates a world of its own and wanders in day dreams.

Revered holy congregation, the mind continues wandering about here and there. It is said that the mind is a trader and has come to trade in the Name Divine, which is more precious than jewels, diamonds and pearls. It is invaluable. But, after coming to the congregation, if it does not trade at all, then what happens. So, when it enters the shop of the body, it has many commodities or things. It has the tongue. How to trade with the tongue? Guru Sahib tells us the manner of trading with the tongue –

Refrain: True is the Lord God's Name;
O Timeless One, thou alone art existent ...

ਧਾਰਨਾ– ਸਤਿਨਾਮ ਵਾਹਿਗੁਰੂ,
ਅਕਾਲ ਪੁਰਖ ਤੂੰ ਹੀ ਹੈਂ,
ਅਕਾਲ ਪੁਰਖ ਤੂੰਹੀਂ ਹੈਂ

The tongue trades by uttering the holy Word and hymn, by reciting and contemplating the Name Divine. Trade in the Name (*Waheguru*) with each breath, utter *'Wahe'* when you breathe in, and *'Guru'* when you breathe out. Do so in mind's concentration, in the *'trikuti'* (middle of the

forehead just above the eyebrows) and in the *'agya chakra'* (white inverted lotus with two petals between the eye brows) in accordance with the state of spiritual attainment as it comes about. The mind has to trade in the 'True Name' in this very physical body, but the trader is the mind. If the trader does not work, then who will trade in the Name commodity or wealth? While man reads *Jap Ji Sahib* (*Gurbani* composition) his mind wanders about elsewhere. While he reads *Gurbani* and contemplates the Name Divine, his thoughts continue wandering about here and there. In such a state, the trader-mind is not present to trade in the Name commodity. Therefore, Guru Sahib says –

'This body is a shop, the mind therein the trader – spontaneously therein carrying on commerce of truth.' P. 942

ਤਨੁ ਹਟੜੀ ਇਹੁ ਮਨੁ ਵਣਜਾਰਾ॥
ਨਾਨਕ ਸਹਜੇ ਸਚੁ ਵਾਪਾਰਾ॥

It is said that God is present in the holy congregation. When the devotee's mind becomes absorbed in the Name Divine, then he savours and enjoys its relish. Guru Sahib advises us to taste this Name-elixir –

'The Name Divine is amrita (nectar) –
By guidance of the Master (Guru) perfectly endowed, taste of joy in God.' P. 997

ਅੰਮ੍ਰਿਤੁ ਹਰਿ ਹਰਿ ਨਾਮੁ ਹੈ
ਗੁਰਿ ਪੂਰੈ ਹਰਿ ਰਸੁ ਚਾਖੁ॥

It is *'amrita'* (nectar) –

'Egoists are desire-filled; their minds in ten directions wandering, full of a million desires.
Cursed is the life of egoists, devoid of the Name, in offal abiding.'

ਮਨਮੁਖ ਤ੍ਰਿਸਨਾ ਭਰਿ ਰਹੇ
ਮਨਿ ਆਸਾ ਦਹ ਦਿਸ ਬਹੁ ਲਾਖੁ॥
ਬਿਨੁ ਨਾਵੈ ਧ੍ਰਿਗੁ ਜੀਵਦੇ
ਵਿਚਿ ਬਿਸਟਾ ਮਨਮੁਖ ਰਾਖੁ॥

Their life is one of a being dictated by the mind. It is like abiding in ordure –

'In transmigration are they whirled;
Over numerous births eating of malodorous substances.' P. 997

ਓਇ ਆਵਹਿ ਜਾਹਿ ਭਵਾਈਅਹਿ
ਬਹੁ ਜੋਨੀ ਦੁਰਗੰਧ ਭਾਖੁ॥

So, the egoists come and go, die and take birth, and abide in foul-smelling offal. Therefore, unless and until we make the mind a trader in the Name commodity, there is no attainment to the Lord. So, in the true mint of *Sri Guru Granth Sahib*, what has to be forged and fashioned? Guru Sahib says – 'We have to forge the True Word; in this context, such is the Guru's edict, which should be recited with concentration –

Refrain: My dear, forge the holy Word of the True Mint.

ਧਾਰਨਾ – ਘੜ ਲੈ ਪਿਆਰਿਆ,
ਸ਼ਬਦ ਸੱਚੀ ਟਕਸਾਲ ਦਾ

In the mint, we should forge the holy Word of the True Mint. If the holy Word or some coin is to be forged, first of all, required materials are needed. So, the command of experienced holy men is that if necessary materials become available, then there is success all around.' First is required faith in the holy Preceptor. Not even by mistake should you have critical doubts about the holy Preceptor and his doings or ways. Don't regard the holy Preceptor as no less than God and ever continue singing his laudations.

There are many devotees who with the grace of the capable holy Preceptor, by imbibing and following his teachings make some achievements by Divine mercy. But they make no mention of their Preceptor and give the impression that they have become perfect on their own and with their own efforts. Such persons who by concealing their

Preceptor and manifesting their qualities earn praise for themselves and create the impression that they have achieved everything with their own efforts, seldom make mention of their holy Preceptor. They turn their back upon the Guru, and even this has been seen that on achieving great glory, they even stop revering their Guru. Regarding him an ordinary person, they do not praise his qualities even by mistake. Such devotees incur the blame of insulting their Guru. In this context, there is a story about a devotee who by virtue of his own merits and by imbibing the teachings of the Guru started earning people's praise. He thought in his mind – 'My utterance is more beautiful and pleasing than the Guru. I can converse in a musical measure. When I do narration and explication, I give examples and quotations from other scriptures. Consequently, I am getting great respect and honour from the people.' Gradually, he stopped honouring his Guru. One day, it so happened that when some prominent persons were sitting in the assembly, and his Guru entered there, he tried to ignore him. He made it appear as if he had not seen the Guru come there. At that moment, his Guru invoked a curse on him: "You are a complete demon. Violating all tradition and practice, you have behaved like a demon. You have insulted the Guru-disciple tradition. May you forget all your knowledge and learning and may you become a demon!" He knew very well – "My Guru is capable and omnipotent. I do not have those spiritual powers which my Guru has naturally." So, he was frightened by this curse, and falling at the Guru's feet, said, "Sir! I am a fool. Out of pride, I did not show due respect to you. Kindly forgive me because your utterances have the potential of turning out to be true. None can undo them or evade them." In *Sri Guru Granth Sahib* also occurs an edict to this effect -

'Destroyed shall be the egg-born, placenta-born, the atmosphere-born and perspiration-born.
Destroyed shall be the four Vedas and the Six Shastras;
Immutable shall alone be the word of the holy.
Destroyed shall be the qualities of energy, sloth and intellect.
All that is visible shall be destroyed –
The word of the holy alone shall be limitless.' P. 1204

ਅੰਡ ਬਿਨਾਸੀ ਜੇਰ ਬਿਨਾਸੀ
ਉਤਭੁਜ ਸੇਤ ਬਿਨਾਧਾ।।
ਚਾਰਿ ਬਿਨਾਸੀ ਖਟਹਿ ਬਿਨਾਸੀ
ਇਕਿ ਸਾਧ ਬਚਨ ਨਿਹਚਲਾਧਾ॥
ਰਾਜ ਬਿਨਾਸੀ ਤਾਮ ਬਿਨਾਸੀ
ਸਾਤਕੁ ਭੀ ਬੇਨਾਧਾ॥
ਦ੍ਰਿਸਟਿਮਾਨ ਹੈ ਸਗਲ ਬਿਨਾਸੀ
ਇਕਿ ਸਾਧ ਬਚਨ ਆਗਾਧਾ॥

The Guru's utterance was a sure-shot arrow which could not be checked or annulled in any way. On seeing his pathetic state, the Guru's heart was moved to pity. He said, "You will no doubt become a demon, but you will be liberated by a great and capable true Guru." He said, "But how will I be able to recognize him? I will become a demon. Where demons eat flesh and drink wine, they are cannibals also. When, after killing a man, I will eat his flesh, more sins will accrue to me. Sir! I was deluded. I happened to commit the disobedience which surpasses all others, because turning back upon the Guru is the biggest disobedience. No other sin can equal its gravity –

'Killing of a Brahmin, a cow and dynasty are grave sins.

Drinking, gambling and ravishing others' women are also rank sins.
Usurpation of others' wealth by thieves, robbers and highway men too is a big crime.
Persons treacherous and ungrateful, and killers are also guilty of terrible sin and crime.
Even if we combine millions of such sinners,
Of the apostate they equal not even a single body hair.' *Bhai Gurdas Ji, Var 34/16*

ਬਾਮ੍ਹਣ ਗਾਂਈ ਵੰਸ ਘਾਤ ਅਪਰਾਧ ਕਰਾਰੇ।
ਮਦ ਪੀ ਜੂਏ ਖੇਲਦੇ ਜੋਹਨਿ ਪਰ ਨਾਰੇ।
ਮੁਹਨਿ ਪਰਾਈ ਲਖਮੀ ਠੱਗ ਚੋਗ ਚਗਾਰੇ।
ਵਿਸਾਸ ਧ੍ਰੋਹੀ ਅਕ੍ਰਿਤਘਣ ਪਾਪੀ ਹਤਿਆਰੇ।
ਲੱਖ ਕਰੋੜੀ ਜੋੜੀਅਨਿ ਅਨਗਿਣਤ ਅਪਾਰੇ।
ਇਕੱਤ ਲੂਇ ਨ ਪੁੱਜਨੀ ਬੇਮੁਖ ਗੁਰਦੁਆਰੇ।

Much sin accrues to one who keeps the company of such a man, because he is an apostate who has been cursed by the Guru. If someone says, "Sir, we only talk with him and do not receive any impression from him", Bhai Gurdas Ji responds to it in Var 34, stanza 15 –

'If we enter a collyrium store, our face we will blacken.
No purpose shall be served by sowing land barren.
Swinging on a broken swing into pit shall we fall.
Holding shoulder of men who know not swimming at all,
How can we swim life's arduous ocean?
Rescue not the man who sets his house ablaze and sleeps therein.
Similarly, apostates' company is hazardous like highway men.
And us, it should frighten.'
Bhai Gurdas Ji, Var 34/15

ਵੜੀਐ ਕਾਲਖ ਕੋਠੜੀ ਮੁਹੁ ਕਾਲਖ ਭਰੀਐ।
ਕੱਲਰ ਖੇਤੀ ਬੀਜੀਐ ਕਿਹੁ ਕਾਜ ਨ ਸਰੀਐ।
ਟੁੱਟੀ ਪੀਂਘੇ ਪੀਂਘੀਐ ਪੈ ਟੋਏ ਮਰੀਐ॥
ਕੰਨਾ ਫੜਿ ਮਨਤਾਰੂਆਂ ਕਿਉ ਦੁੱਤਰੁ ਤਰੀਐ।
ਅਗਿ ਲਾਇ ਮੰਦਰਿ ਸਵੇ ਤਿਸ ਨਾਲਿ ਨ ਫਰੀਐ।
ਤਿਉਂ ਠੱਗ ਸੰਗਤਿ ਬੇਮੁਖਾਂ ਜੀਅ ਜੋਖਹੁ ਡਰੀਐ।

In religious literature, it is averred even to this extent that if a person befriends or deals with an apostate, a grave sin accrues to him because an apostate is under the Guru's curse. Guru Sahib goes to the extent of asserting that if a devotee loses temper or becomes angry, then anger pollutes 215000,000,000 cells in his body and hidden flames of anger blaze forth from him. Even the person touching him is affected by that anger. Guru Sahib has accepted no pollution on the basis of caste, but he does accept the pollution caused by an angry man because the entire blood in him is polluted. Such waves come out of his body that naturally enter the person who shakes hands with him or embraces him. If a person meditates on the Name Divine, and is absorbed in Name contemplation, he at once comes to know why he has received the shock and his contemplation or trance broken, when he hasn't done anything wrong. But he does not know that waves from an angry person have entered his body. Therefore, Guru Sahib has stated –

'Draw not near and in the neighbourhood of those in whose heart is the pariah of wrath.'
P. 40

ਓਨਾ ਪਾਸਿ ਦੁਆਸਿ ਨ ਭਿਟੀਐ
ਜਿਨ ਅੰਤਰਿ ਕ੍ਰੋਧੁ ਚੰਡਾਲ॥

Whether it is a wrathful person, or an avaricious one, or an egoist, his influence on others is harmful. That is why, it is stated in the *'Rehatnama'* [Sikh code of conduct]: 'If you accept food from a person, who is unknown to you, about whose vocation and thinking you do not know, then your absorption in Name meditation will be disturbed and you won't be able to practise meditation for several days. Even if love and devotion for God is surging within you, it will be affected and become dim. Such is the commandment in the 'Rehatnama':

'He whose living thou dost not know and who follows not Gurbani tradition,
By eating from his hand thou shalt forget God's devotion.' (Rehatnama)

ਜਾ ਕੀ ਰਹਿਤ ਨ ਜਾਣੀਐ ਗੁਰਬਾਣੀ ਨਹੀ ਰੀਤ।
ਤਿਸ ਦੇ ਹਥਹੁੰ ਖਾਧੀਐ ਵਿਸਰੇ ਹਰਿ ਕੀ ਪ੍ਰੀਤ।

'By holding a sheep's tail how can one cross the river?
By befriending a ghost one ever lives in doubt and fear. (Who knows when he may kill?)
Depend not on the tree standing on the river-bank. (Who knows when it may fall?)
By marrying a corpse how can a woman enjoy the bliss of marriage?
By sowing poison how can one obtain nectar? (That is, by sowing poison, you can reap only poison).
By loving an apostate, one is bound to suffer the punishment of death.'
Bhai Gurdas Ji, Var 34/7

ਭੇਡੈ ਪੂਛਲਿ ਲੱਗਿਆਂ ਕਿਉਂ ਪਾਰ ਲੰਘੀਐ।
ਭੂਤੈ ਕੇਰੀ ਦੋਸਤੀ ਨਿਤ ਸਹਸਾ ਜੀਐ।
ਨਦੀ ਕਿਨਾਰੈ ਰੁੱਖੜਾ ਵੇਸਾਹੁ ਨ ਕੀਐ।
ਮਿਰਤਕ ਨਾਲਿ ਵਿਵਾਹੀਐ ਸੋਹਾਗੁ ਨ ਥੀਐ।
ਵਿਸੁ ਹਲਾਹਲ ਬੀਜਿ ਕੈ ਕਿਉਂ ਅਮਿਓ ਲੀਐ।
ਬੇਮੁਖ ਸੇਤੀ ਪਿਰਹੜੀ ਜਮ ਡੰਡ ਸਹੀਐ।

So, about the man who turns his back upon the Guru, the *Gurbani* edict is –

Refrain: By turning his back upon the Guru
How will man cross the world-ocean?

ਧਾਰਨਾ – ਗੁਰਾਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁਖ ਹੋ ਗਿਆ,
ਹੁਣ ਕਿਵੇਂ ਪਾਰ ਲੰਘੇਗਾ

'Should one from the Master (Guru) turn away, without the Master's (True Guru's) guidance shall he not attain liberation.
By no other means shall he find liberation:
Inquire of those with true discrimination endowed.
After wandering over endless births, without the holy Preceptor's guidance
Shall he not find liberation.
Liberation shall at last come as the holy Preceptor's feet he touches,
And to his Word listens.
Saith Nanak: Contemplate this and resolve:
Without the holy Preceptor's guidance none liberation obtains.' P. 920

ਜੇ ਕੋ ਗੁਰ ਤੇ ਵੇਮੁਖੁ ਹੋਵੈ
ਬਿਨੁ ਸਤਿਗੁਰ ਮੁਕਤਿ ਨ ਪਾਵੈ॥
ਪਾਵੈ ਮੁਕਤਿ ਨ ਹੋਰਥੈ ਕੋਈ
ਪੁਛਹੁ ਬਿਬੇਕੀਆ ਜਾਏ॥
ਅਨੇਕ ਜੂਨੀ ਭਰਮਿ ਆਵੈ
ਵਿਣੁ ਸਤਿਗੁਰ ਮੁਕਤਿ ਨ ਪਾਏ॥
ਫਿਰਿ ਮੁਕਤਿ ਪਾਏ
ਲਾਗਿ ਚਰਣੀ ਸਤਿਗੁਰੂ
ਸਬਦੁ ਸੁਣਾਏ॥
ਕਹੈ ਨਾਨਕੁ ਵੀਚਾਰਿ ਦੇਖਹੁ
ਵਿਣੁ ਸਤਿਗੁਰ ਮੁਕਤਿ ਨ ਪਾਏ॥

So, holy congregation! turning away from the Guru is a grave sin. The sages have counted six killings as grave sins: Killing a holy man who has knowledge of *Brahm* (the Ultimate Reality) and who reflects on Him; killing a gentleman with cow-like temperament, who wishes good to all; killing one's own daughter; betraying a man's confidence and then killing him; after taking loan, denying having taken loan; becoming ungrateful. These are the six grave killings. A person guilty of anyone of these is called a 'killer' or 'a murderer'. One murder invites the punishment of 96 crore ordinary sins. The punishment of the six killings mentioned above is equal to that 576,000,000,000 ordinary sins. If a man kills his father, it is equal to 1000 murders. Such is the opinion of experienced and exalted holy men. That is why, Bhai Gurdas has written that if even crores of rank sinners are combined, they are not equal to a single body-hair of an apostate.

So, in this manner, that scholarly holy man for not honouring his Guru (Preceptor), became a demon, who, in history, has been mentioned by the name of Kauda. When he took away Mardana and was about to fry

him in a cauldron of boiling oil, Guru Nanak Sahib reached there in the nick of time and saved him. The cauldron of oil became cold like ice. He was surprised to see two persons standing before by whose glance the oil became cold. He went inside running and brought the mirror. He saw Guru Nanak Sahib's reflection in the mirror. He fell at Guru Sahib's lotus feet. As soon as he placed his head at his feet, all vices and wrong propensities were dispelled, and he realized that the annuller of his grave sin had arrived. Lying prostrate 'At Sovereign Guru Nanak Sahib's feet, he prayed, "O Sovereign! save me; I am a great sinner." Guru Sahib gave good counsel and bestowing on him the boon of Name wealth, rid him of all his sins, and placing his hand on his head removed all his vices, and Divine Name melody started ringing from every trichome on his body. Recite –

Refrain: The Guru removed all his vices,
By placing his hand on his head ...

ਧਾਰਨਾ – ਵਿਚੋਂ ਮਾਰ ਕੱਢੀਆਂ ਬੁਰਿਆਈਆਂ,
ਗੁਰਾਂ ਨੇ ਸਿਰ ਤੇ ਹਥ ਰੱਖ ਕੇ।

'Render praise to the holy Preceptor for his greatness, Who such great merits possesses.
By union Divinely ordained are these made visible.
As be the Lord's pleasure, these in the seeker's mind are fixed by Divine ordinance as the Master his hand on the seeker's forehead places.
Cast out are evils.' P. 473

ਸਤਿਗੁਰੁ ਵਡਾ ਕਰਿ ਸਾਲਾਹੀਐ
ਜਿਸੁ ਵਿਚਿ ਵਡੀਆ ਵਡਿਆਈਆ ॥
ਸਹਿ ਮੇਲੇ ਤਾ ਨਦਰੀ ਆਈਆ ॥
ਜਾ ਤਿਸੁ ਭਾਣਾ
ਤਾ ਮਨਿ ਵਸਾਈਆ ॥
ਕਰਿ ਹੁਕਮੁ ਮਸਤਕਿ ਹਥੁ ਧਰਿ
ਵਿਚਹੁ ਮਾਰਿ ਕਢੀਆ ਬੁਰਿਆਈਆ ॥

When he (Kauda) went to enter the fold of Sikhism, Bhai Mardana asked, "Revered sir! why had he gone in and brought the mirror?" Guru Sahib said, "Bhai Mardana! you better ask Kauda demon himself." Now Kauda had ceased to be a demon. He had been transformed completely. He said, "Sir! I am guilty of having committed a very big mistake as Bhai Mardana too has, who, leaving your company, was going home. Whenever I ate a human being, I saw his image in this mirror, and he appeared to me a beast. I never ate a human being. So Mardana too, after forsaking the Guru, appeared to be different to me. O True Sovereign! I was a great scholar. But I committed a big affront. I insulted my Guru. The later cursed me. When at my weeping and wailing, he felt pity for me, he said, "I am giving you a mirror. Look in this mirror. It will tell you that the person you are eating is worse than even an animal.

Refrain: Though thou art a human,
Thine acts are beastly.

ਧਾਰਨਾ – ਮਾਨਸ ਤੇਰੀ ਜਾਤ ਹੈ,
ਪਸ਼ੂਆਂ ਦੇ ਕੰਮ ਕਰਦੈਂ

'Though of the human species, yet are man's actions beast-like –
Day and night in putting up a false show before the world engaged.
Outside has he assumed a false disguise, within him lies Maya-impurity;
Know, by concealment is nothing concealed.
For show he engages in learned discourses, meditation and ritual baths:
Within is lying canine greed.
Within him is fire of evil desires,
His limbs for outward show smeared with dust.
To his neck tied a stone – how may he swim across the limitless ocean?
Such as have lodged within their selves the Lord,
Saith Nanak, into poise are absorbed.'
P. 267

ਕਰਤੂਤਿ ਪਸੂ ਕੀ ਮਾਨਸ ਜਾਤਿ॥
ਲੋਕ ਪਚਾਰਾ ਕਰੈ ਦਿਨੁ ਰਾਤਿ॥
ਬਾਹਰਿ ਭੇਖ ਅੰਤਰਿ ਮਲੁ ਮਾਇਆ॥
ਛਪਸਿ ਨਾਹਿ ਕਛੁ ਕਰੈ ਛਪਾਇਆ॥
ਬਾਹਰਿ ਗਿਆਨ ਧਿਆਨ ਇਸਨਾਨ॥
ਅੰਤਰਿ ਬਿਆਪੈ ਲੋਭੁ ਸੁਆਨੁ॥
ਅੰਤਰਿ ਅਗਨਿ ਬਾਹਰਿ ਤਨੁ ਸੁਆਹ॥
ਗਲਿ ਪਾਥਰ ਕੈਸੇ ਤਰੈ ਅਥਾਹ॥
ਜਾ ਕੈ ਅੰਤਰਿ ਬਸੈ ਪ੍ਰਭੁ ਆਪਿ॥
ਨਾਨਕ ਤੇ ਜਨ ਸਹਿਜ ਸਮਾਤਿ॥

'Animals in human form, wrapped around with skins, black their hearts.
By light of the holy Word have I beheld Truth operating everywhere.' P. 284

ਪਸੂ ਮਾਣਸ ਚੰਮਿ ਪਲੇਟੇ ਅੰਦਰਹੁ ਕਾਲਿਆ॥
ਸਭੋ ਵਰਤੈ ਸਚੁ ਸਚੈ ਸਬਦਿ ਨਿਹਾਲਿਆ॥

So, revered sir! I ate humans after seeing their image in the mirror. When I looked at your reflection in the mirror, I beheld sheer bright light. My Guru had told me that my saviour would appear as sheer light in the mirror. So Sovereign! I could not bear the brightness of your image in the mirror. There is none in the world, who can bear the radiance of your visage." Seeing his humility, Guru Sahib made him receive the gift of the Name Divine from Bhai Mardana. The Name-elixir or Name-relish, he obtained, Guru Sahib commanded to be distributed among the people of the world. He came to be called, the Guru (Holy Preceptor) of his tribe. It cannot be said with certitude where his place is. Some opine it to be in Assam. But there is a *gurdwara* at Jabalpur which is named after him – *Gurdwara Kauda Sahib*.

The devotee who does not sing laudations of his Guru (Holy Preceptor) cannot tread on the path of spirituality. So this commodity of Name meditation and Divine laudation is very essential. Do not consider your Guru less than God. About the Guru, there are four essential beliefs: 1. My Guru is an excellent saint. 2. My Guru is the greatest of all saints. 3. My Guru is God-like. 4. My Guru is himself Transcendent Lord God. This is what has been said in its confirmation –

Refrain: 'The Guru is God and God is the Guru, O Nanak.
There is no difference between the two, my brother.

ਧਾਰਨਾ – ਗੁਰ ਗੋਬਿੰਦ ਗੋਬਿੰਦ ਗੁਰੂ ਹੈ,
ਨਾਨਕ ਭੇਦ ਨਾ ਭਾਈ।

'I have churned the body ocean and I have seen an enamouring thing come to view.
The Guru is God and God is the Guru, O Nanak.
There is no difference between the two, my brother.' P. 442

ਸਮੁੰਦੁ ਵਿਰੋਲਿ ਸਰੀਰੁ ਹਮ ਦੇਖਿਆ
ਇਕ ਵਸਤੁ ਅਨੂਪ ਦਿਖਾਈ॥
ਗੁਰ ਗੋਵਿੰਦੁ ਗੁੋਵਿੰਦੁ ਗੁਰੂ ਹੈ
ਨਾਨਕ ਭੇਦੁ ਨ ਭਾਈ॥

So, it is only after having complete faith in the Guru that you develop faith in the *'Gurmantar'* (Guru-bestowed mystic chant or formula). If you do not have faith in the Guru, the latter may bestow upon you any chant or mystic formula, it is not fruitful and useful. Faith, trust and devotion have the same meaning. There is a story narrated by exalted holy men that once a simple devotee on listening to a discourse at a holy gathering became an ascetic. Becoming a renunciate, he went into the refuge of an exalted holy man. There, many other devotees also used to render service. The holy man rendered service in the community kitchen also. In the kitchen, he used the milk of his own cattle. He refrained from begging. He ran the kitchen with his honest labour. He was perfect in making honest earnings. Approaching him, this simple devotee said, "Sir, I have to swim across the

world-ocean. Please tell me some method to achieve my goal." The holy man saw that he was a simple and innocent person. So, he said to him, "My dear! Render service. Look after the cattle. Great care has to be taken of them. They have to be kept in a neat and clean place. Remove the cattle-dung quickly and throw it on the hung-hill. Take care that the cattle don't sit in dung. Keep them neat and clean for only then shall we get clean milk. If the cattle remain smeared with dung, then, as they are being milked, the dung from their waving tale falls into milk. In this way, it does not remain fit for being offered to God." So, that devotee kept rendering service with great care. Eight years passed in this manner. Somebody inquired from him, "Has the holy man bestowed on you any mystic chant?" He said, "I have been put on doing service only." The other devotee said, "To meet Lord God, it is very essential to receive a mystic chant from the Guru (Holy Preceptor), which has to be recited and contemplated day and night. It should be so much and continuous that if it is forgotten, he should feel as if he is not living." In this context, Guru Sahib says –

Refrain: The fish lives not without water;
Without water, the fish does not live.

ਧਾਰਨਾ – ਨਾ ਜੀਵੇ, ਮੱਛੀ ਨੀਰ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ

'As without water the fish finds not life;
As without the drop of rain the chatrik (a tiny bird) feels not content;
As the deer attracted by sound rushes to face the hunter;
As the humming-bee, greedy for the fragrance of the lotus, gets bound -
Thus is love for the Lord in the heart of His devotees:
By His sight feel they fulfilled.' *P. 708*

ਜਿਉ ਮਛੁਲੀ ਬਿਨੁ ਪਾਣੀਐ
ਕਿਉ ਜੀਵਣੁ ਪਾਵੈ ॥
ਬੂੰਦ ਵਿਹੂਣਾ ਚਾਤ੍ਰਿਕੋ
ਕਿਉ ਕਰਿ ਤ੍ਰਿਪਤਾਵੈ ॥
ਨਾਦ ਕੁਰੰਕਹਿ ਬੇਧਿਆ
ਸਨਮੁਖ ਉਠਿ ਧਾਵੈ ॥
ਭਵਰੁ ਲੋਭੀ ਕੁਸਮ ਬਾਸੁ ਕਾ
ਮਿਲਿ ਆਪੁ ਬੰਧਾਵੈ ॥
ਤਿਉ ਸੰਤ ਜਨਾ ਹਰਿ ਪ੍ਰੀਤਿ ਹੈ
ਦੇਖਿ ਦਰਸੁ ਅਘਾਵੈ ॥

On hearing these words, that devotee who was free from any kind of wile and guile, logic and argument and who was totally obedient to his Guru, went to him and submitted, "Reverend sir! in obedience to your command I have been looking after the cattle for the past eight years. It is very kind and gracious of you to have granted this service to me. But sir! my fellow-devotees have told me that I haven't as yet received the *'Gurmantar'*(Guru-given chant) by reciting and contemplating which Lord God is attained. Although it is only with the Guru's grace that God is attained (for none has attained to God with his own power and effort), yet on my part there has been no effort so far. Kindly bless me with the *'Gurmantar'* (Guru-given mystic chant) as well as the method of reciting and contemplating it." It was evening time, when the sun was setting. At this hour, we read or recite *Rehras Sahib*, Hindus read or recite *'Sandhya'* (evening prayer) and Muslims offer the evening *'namaz'* (prayer). The holy man said, "To receive the *'Gurmantar'* (Guru-given mystic chant) come to me at eight O'clock in the morning." This devotee was very much pleased. He reached the place of his work. At night he could not sleep, lest he should get late. He finished half his work during night itself. He threw the cattle-dung on the dung-hill. Casually he asked someone what time it was. He said that it was about

to strike eight. Hurriedly smeared with dung, he headed towards the holy man. There, it so happened that the king's officials came the previous evening and said, "The king wishes to see you at 8 O'clock in the morning." The holy man said, "Brothers! what have kings got to do with us? I am an ascetic who has renounced the world. I have only a mat on which I sleep. If your king is ready to sit on it, he may come at 8 O'clock." The officials said, "Although our king can sit on the mat, yet we wish to make some sitting arrangements." So, they brought excellent carpets early in the morning and spread them. Before the king's arrival, that devotee with smeared feet set out to receive the *'Gurmanatar'* (Guru-given mystic chant). The holy man was casually standing before his cottage. When he saw him (devotee), raising his hand, he said, "*Pareh! Pareh! Pareh!* (keep away)." It meant: "Your feet are smeared with dung. So keep them away from the carpets." But the devotee was delighted thinking that he had got the *'Gurmantar'* (Gurus' chant). From that very moment, he started repeating it. (*Pareh! Pareh!*). He practised its recitation so much that it went deep into his being. He rendered service with hands and feet, but with his heart and mind, he kept repeating *'Pareh! Pareh!'* This recitation and contemplation became so powerful that he started hearing this sound -*'Pareh! Pareh!'* from within his self. Even in the wind and bird's chirping he heard this sound. Neither did the holy man call him again, nor did he (devotee) entertain any doubts about the correctness of his *'Gurmantar'*. He was considering *'Pareh! Pareh!'* to be the immaculate Lord God. One day, the holy man summoned him and said, "A friend of mine lives at a distance of forty miles from here. Deliver this letter to him, and bring its reply also at the earliest. You are not to stop there but to return after taking a little rest." He took the letter from the holy man and came to his hut. He thought, "I am enjoying the recitation of *'Pareh! Pareh!'* Involved in carrying the letter and bringing its reply, I may forget *'Pareh! Pareh!'* and miss the bliss its recitation affords me." Observing his worry and anxiety, there was a sudden effulgence. God appeared before him in immanent form. He said, "My beloved devotee! Give me the letter, I will bring its reply at once." He submitted most respectfully, "Reverend Sir! I have never seen you before. How will you go so far?" The Lord said, "I am ruled by love. I am above chants and mystic formulas. I see only a person's love and devotion. Observing your infinite devotion, I have given you glimpse of my immanent form. The whole world is asking from me one thing or the other and I continue granting them boons. But the world does not love me in return. Getting satisfied with my gifts, people forget me completely, as is the *Gurbani* edict –

'Man loves gifts and forgets the Giver.
The poor creature thinks not of death.'

P. 676

ਦਾਤਿ ਪਿਆਰੀ ਵਿਸਰਿਆ ਦਾਤਾਰਾ ॥
ਜਾਣੈ ਨਾਹੀ ਮਰਣੁ ਵਿਚਾਰਾ ॥

God took the letter from him, and after sometime handed over its reply from the holy man.

This devotee was very much pleased and wondered – "How nice is this *'Parey! Pareh!'* He has done the task which I was supposed to do." There is a *Gurbani* edict to this effect –

(... to be continued)

The Discourse of Sant Ji

Sant Waryam Singh Ji

(Continued from P. 83, issue June, 2018)

These are the four gates to salvation, which you have to cross to reach your goal, Sat (truth). This stage consists of detaching oneself from all desires, from the worldly anxieties from the memories of by-gone-times, or feeling apprehensive about the future shape of things.

Also one should keep one's mind uncontaminated by the useless thoughts of enmity, opposition, desire and sex, anger, greed, false thinking and so on. Also one should not give way to any grief, nor have any ambition to amass wealth, nor keep on terms of friendship with persons who are given to false show or hypocrisy; one should give up all worries in one's mind regarding one's children, nor think of the attractions of a house-holder's life. Nor one should allow his mind to be enmeshed in the past events, or be troubled by anticipating pointless thoughts of the difficulties that may crop up in future.

Never sit in the company of the fools, fanatics, ignorant fellows, licentious persons enamoured of physical enjoyments and never be influenced by these unworthies. Go on repeatedly chanting the Name of God and earning the best actions. This is the only way to be rid of all the chains of the world. This is only way, very easy cure for the ills of the world. Keep a complete watch over these means with all caution.

Santokh (contentment) (ਸੰਤੋਖ) - Lack of contentment is the biggest hurdle in the path of repetition of God's Name. Without content, one is washed away in desires. There is no happiness like contentment. In whatever job you are fulfil your duty with sincerity and diligence. One should be satisfied with whatever destiny has sent him. That is called contentment.

Guru Maharaj has named only contentment as the best fulfillment of the mind -

Without contentment, no one is sated.
Like the objects of a dream, all his works are vain.

ਬਿਨਾ ਸੰਤੋਖ ਨਹੀ ਕੋਊ ਰਾਜੈ॥
ਸੁਪਨ ਮਨੋਰਥ ਬ੍ਰਿਥੇ ਸਭ ਕਾਜੈ॥ ਅੰਗ - 279

Do thou practise truth, contentment and mercy. The most excellent is this way of life.

ਸਤੁ ਸੰਤੋਖੁ ਦਇਆ ਕਮਾਵੈ ਏਹ ਕਰਣੀ ਸਾਰ॥
ਅੰਗ - 51

To imbibe the spirit of forgiveness, is for me the fasting, good conduct and contentment.
So neither ailment nor death pain harasses me.

ਖਿਮਾ ਗਹੀ ਬ੍ਰਤੁ ਸੀਲ ਸੰਤੋਖੰ॥ ਰੋਗੁ ਨ ਬਿਆਪੈ ਨਾ ਜਮ ਦੋਖੰ। ਅੰਗ - 223

As against this, Guru Maharaj has termed desire to be biggest ailment. An ambitious person goes on searching every door like a dog and he never enjoys contentment of the heart. Desire is a fire that ever keeps on burning in one's heart. A person slave to desires has no wish to achieve God; he is oblivious of death.

They contract this dire disease of greed and in their mind, forget death.

ਏਹ ਤਿਸਨਾ ਵਡਾ ਰੋਗੁ ਲਗਾ ਮਰਣੁ ਮਨਹੁ ਵਿਸਾਰਿਆ।। ਅੰਗ - 919

Man's objective in this life was the attainment of God. But a person caught in the web of desires wanders from pillar to post. He is always forgetful of God.

Mammon has spread out its net and in it has placed the bait.
The avaricious bird is snared and cannot escape O my Mother!

ਮਾਇਆ ਜਾਲੁ ਪਸਾਰਿਆ ਭੀਤਰਿ ਚੋਗ ਬਣਾਇ।।
ਤ੍ਰਿਸਨਾ ਪੰਖੀ ਫਾਸਿਆ ਨਿਕਸੁ ਨ ਪਾਏ ਮਾਇ।।
ਅੰਗ - 50

This desire is such an emotion of this unreal world that one is always harping on the thought of what he would do, if he had a lakh of rupees. When he has achieved a lakh, his ambition is to amass a crore and later an arab (billions). The Guru has ordained that desire is such a fire, that gets more intense with the achievements of the gains. One is blinded and stays deprived of his supreme goal. He leaves for the next world, carrying on unbearable burden of countless desires. Maharaj Ji ordains as under -

The craving of even the great kings and the big land-lords is not quenched.
Intoxicated with the pleasure of wealth, they remain engrossed in it and their eyes see not anything else. In sin none has ever been satiated.
As the fire is satiated not with any fuel, so how can the mortal be content without the Lord? Pause.

ਵਡੇ ਵਡੇ ਰਾਜਨ ਅਰੁ ਭੂਮਨ ਤਾ ਕੀ ਤ੍ਰਿਸਨ ਨ ਬੂਝੀ।।
ਲਪਟਿ ਰਹੇ ਮਾਇਆ ਰੰਗ ਮਾਤੇ ਲੋਚਨ ਕਛੂ ਨ ਸੂਝੀ।।
ਬਿਖਿਆ ਮਹਿ ਕਿਨ ਹੀ ਤ੍ਰਿਪਤਿ ਨ ਪਾਈ।।
ਜਿਉ ਪਾਵਕੁ ਈਧਨਿ ਨਹੀ ਧ੍ਰਾਪੈ ਬਿਨੁ ਹਰਿ ਕਹਾ ਅਘਾਈ।। ਅੰਗ - 672

There can be a rare person, who has lodged God's Name in his heart and thus all his desires are extinguished. Leaving aside such an exceptional person, the high blazes of ambition go on burning the whole world.

The thirst (desire) of only a few is quenched (stilled). Pause.
Man amasses millions and lacs of millions but restrains not his mind. He longs for more and more.

ਤ੍ਰਿਸਨਾ ਬਿਰਲੇ ਹੀ ਕੀ ਬੁਝੀ ਹੇ।।
ਕੋਟਿ ਜੋਰੇ ਲਾਖ ਕ੍ਰੋਰੇ ਮਨੁ ਨ ਹੋਰੇ।।
ਪਰੈ ਪਰੈ ਹੀ ਕਉ ਲੁਝੀ ਹੇ।। ਅੰਗ - 213

The world keeps on burning in this disease of desires, till it takes the medicine of God's Name, and till one takes refuge in some perfect Guru and practices his sayings. Guru Maharaj has ordained thus -

This world is an earthen puppet,
O Yogi and in it is the dire disease of craving for wealth.
By various efforts and wearing sectarial dresses, this malady is cured not, O Yogi.
God's Name is the medicine, O Yogi, in whatever mind the Lord enshrines it.
He, who becomes resigned to Guru's will, understands this and he alone finds the way of Yoga.

ਇਹੁ ਜਗਤੁ ਮਿਟੀ ਕਾ ਪੁਤਲਾ ਜੋਗੀ
ਇਸੁ ਮਹਿ ਰੋਗੁ ਵਡਾ ਤ੍ਰਿਸਨਾ ਮਾਇਆ।।
ਅਨੇਕ ਜਤਨ ਭੇਖ ਕਰੇ ਜੋਗੀ ਰੋਗੁ ਨ ਜਾਇ ਗਵਾਇਆ।।
ਹਰਿ ਕਾ ਨਾਮੁ ਅਉਖਧੁ ਹੈ ਜੋਗੀ ਜਿਸਨੋ ਮੰਨਿ ਵਸਾਏ।।
ਗੁਰਮੁਖਿ ਹੋਵੈ ਸੋਈ ਬੂਝੈ ਜੋਗ ਜੁਗਤਿ ਸੋ ਪਾਏ।।
ਅੰਗ - 909

There is an anecdote famous about a poor man who served great saints, in the hope of wiping out his poverty. The great person gave him four candles, instructing him to go east at midnight burning the candle. There you would find a big wealth.

If that does not fully satisfy you, next day at midnight go in the western direction. There too you would get a lot of wealth. Next you go in the northern direction, there also you will discover a treasure. But never go in the south, even by mistake. He returned home very happy. At midnight, he started east, where his candle went out, there he found a treasure of copper. Next day, he went in the northern direction. At the spot where his candle went out, he discovered a treasure of silver. On third day at midnight he went in the western direction. There he found a treasure of gold coins. All this wealth was more than enough for him, but still he was not contented. Next night, he went south, ignoring the instruction of the great person. There he was very badly caught and was arrested. Neither he got any advantage of the previous treasures, rather this mounting ambition enmeshed him in perplexities.

Thus Guru Maharaj has called God's Name as the cure for all this. The world burning in the fire of ambitions are feeling very miserable. One country makes preparations for war, in order to extend its power on another country. The cure for ambitions can be had, only by means of God's Name that comes from contentment.

The increased sensual desire is stilled with the Lord's Name.
Through the Gurbani, great contentment wells up and one's attention is perfectly attuned to the Lord. Pause

ਤ੍ਰਿਸਨਾ ਬੁਝੈ ਹਰਿ ਕੈ ਨਾਮਿ ॥
ਮਹਾ ਸੰਤੋਖੁ ਹੋਵੈ ਗੁਰ ਬਚਨੀ
ਪ੍ਰਭ ਸਿਉ ਲਾਗੈ ਪੂਰਨ ਧਿਆਨੁ ॥ ਅੰਗ - 682

So there is no supreme friend in the world as contentment, nor is there any such enemy as ambition. It always causes trouble, it always keeps one on tenter hooks. There is no other enemy such as desire. For the fulfillment of desires one resorts to many contemptible acts, such as grabbing other person's money by fraud, committing thefts, indulging in corruption and robbing people by becoming expert in such forbidden lores as magic, magical formulae, magical charts and posing as the master of the art of calling ghosts; such a one ruins his life by his evil deeds. Hence adopt contentment; it is man's best friend.

Vichar (Ideas of Truth) (ਵਿਚਾਰ) - By the power of thought one should know what in the world is truth and what is untruth. God and soul are the constant truth; also the illusion consisting of name and form is untruth. Also one should consider, who I am? I am neither the body consisting of five elements (earth, water, light, air and ether), nor am I any one of the 25 elements, nor am I consisting of five sense organs (eyes, nose, ears, tongue and skin), nor of the functional organs such as hands, feet etc. nor am I the mind because I say my mind does not feel at ease (my mind, like my house shows that I am separate from the mind or the house). Nor I am intellect, nor am I consciousness. Then what am I? I am certainly existing. Hearing the sayings of great persons, I come to know that I am really the soul, which is the reflection of God Himself. God is All-consciousness, I too am a form of Truth; I too am all bliss like God. The soul is the symbol of God; because of the ills of the world, God Who is Supreme of the Universe

is here called the Self (Atma). With these thoughts, one should feel himself as a part of God and should meditate on God, again and again. One should feel it in the body, in the mind, in the intellect and in I-ness (personal identity). This knowledge brings us deliverance from all troubles. Man realizes his real self.

With acquiring this knowledge the door of salvation is opened for us. For attaining this most difficult stage, one needs hard penances (spiritual earnings). By keeping company with the saints, all metaphysical secrets become revealed.

Satsang (Holy congregation) - The place where people, gathered for the programme of God Truth, True Knowledge and true Dharma is called satsang.

How is the society of saints known?
The Name of One Lord is mentioned there.

ਸਤਸੰਗਤਿ ਕੈਸੀ ਜਾਣੀਐ॥ ਜਿਥੈ ਏਕੋ ਨਾਮੁ ਵਖਾਣੀਐ॥ ਅੰਗ - 72

Without satsang, no effort can bear fruit, nor can there be acquisition of True Knowledge by getting rid of one's doubts. The Supreme method of all ways is taking part in satsang.

Singing of God's praise in the saints' society is the highest of all the deeds.
Says Nanak, he alone obtains it, who is predestined to receive it.

ਹਰਿ ਕੀਰਤਿ ਸਾਧਸੰਗਤਿ ਹੈ ਸਿਰਿ ਕਰਮਨ ਕੈ ਕਰਮਾ॥
ਕਹੁ ਨਾਨਕ ਤਿਸੁ ਭਇਓ ਪਰਾਪਤਿ ਜਿਸੁ ਪੁਰਬ ਲਿਖੇ ਕਾ ਲਹਨਾ॥ ਅੰਗ - 642

Satsang is the seed of all spiritual efforts, or in other words it is the mother that gives birth to Sat (Truth), Santokh (contentment), and Vichar (contemplation). With its help, one is saved from bad company and from evil deeds, and one achieves the profit of life namely prayers and obeisance to God. Those persons who keep company with great self-realized souls find that soon their spiritual efforts fructify; for the reason that the atmosphere of satsang is such as where you have the opportunity to hear the Truth and to practice unadulterated truth and nothing but truth. Satsang has two categories; one is called *Bahirang Way* (external way) and the other called *Antarang way* (internal one).

Bahirang consists in going to satsang and giving place to the thoughts of the great souls, by excluding one's own ideas and contemplating and thinking over each of the thoughts just as the cow after eating grass sits at ease and chews the cud, in order to digest it in its liver. Similarly one should chew the cud of those divine ideas in one's mind; also bearing with patience and love, whatever difficulties and hardhips one encounters in this world into the bargain. For best result one should discuss each thought heard at the satsang, with such a comrade as is contemplative, one whose mind is pure, who has patience and is loved at heart. If one does not lodge great thoughts heard at satsang in one's heart and does not contemplate over them then one cannot attain one's objective. Hence one should go on attending the satsang with a firm determination. One should listen to great one's ideas with rapt attention and also practise them in one's life. After sometime, there will be destruction of one's five big obstacles to realization. Having achieved the advantage and great usefulness of satsang he will in this life itself attain the status of immortality, achieve salvation in this life itself and be united with God (meet God).

The chief method in this Iron Age is repeating the Name of God. As Guru Maharaj has ordained -

O, the Darkage has now arrived.
Sow, sow thou the one Lord's Name.
No, it is not the season for other planting.
Wander and stray thou not in doubt.

ਅਬ ਕਲੂ ਆਇਓ ਰੇ॥ ਇਕੁ ਨਾਮੁ ਬੋਵਹੁ ਬੋਵਹੁ॥ ਅਨ ਰੂਤਿ ਨਾਹੀ ਨਾਹੀ॥ ਮਤੁ ਭਰਮਿ ਭੂਲਹੁ ਭੂਲਹੁ॥ ਅੰਗ - 1185

By remembering God and adopting the above-mentioned means, one can achieve one's goal, very quickly indeed. But one most essential means is to keep company of the God-realized great persons.

On the other hand if one gets into the company of *Kathakars* (who give talks on holy scriptures) or those who expound them or are preachers or of ignorant persons who have mentality of passion and jealousy, or one studies the books authored by such false religious leaders, it will give rise to a large number of doubts, which are as poisonous as snakes or scorpions. These bogus religious leaders do not possess true knowledge and have no spiritual experiences. Their discourses are the opposite of Guru Granth Sahib. Such persons lacking in true knowledge indulge in running down the genuine saints, great souls and those who have realized God. They regard this (evil) practice of the acme of their speeches and writings.

They themselves drown in the ocean of the world and also help in drowning those, who accept their thoughts and become their fellow-travellers. Bhai Gurdas Ji ordain as under -

A blind leader leads all followers to bewilderment.

ਅੰਨਾ ਆਗੂ ਜੇ ਥੀਐ, ਸਭੁ ਸਾਥੁ ਮੁਹਾਵੈ॥
ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ, ਵਾਰ 35/2

Thus a long time had elapsed during the discourse of the great saint. While closing his lecture, Maharaj Ji said that the Chandigarh audiences were very, very discriminating. You should all do satsang, rising above the differences of your respective communities and eschewing passions and jealousies all with love. Hearing this, all present expressed hearty thanks to the eminent saint's saying.

We may be belonging to different religions, but the shower of your nectar words is like the water filled clouds, that shower their life-giving rain on all, without any difference of caste or creed. With the grace of God, we have got from you the light of true knowledge. Like true seekers, we should make efforts to reach the door of God, simple-heartedly.

CHAPTER - II

Simran with concentration

Sing the praise of the Lord, O friendly saints, with alertness and single-mindedness.

ਪ੍ਰਭ ਕੀ ਉਸਤਤਿ ਕਰਹੁ ਸੰਤ ਮੀਤ॥ ਸਾਵਧਾਨ ਏਕਾਗਰ ਚੀਤ॥ ਅੰਗ - 295

First descended from Waheguru (God), a transparent ray, the conscious reality, which combing with nature took the epithet of living being. Round this ray, spread a mini globe-like substance, and the ray became resplendant. This state has been termed as the first separation (isolation) by the thoughtful men and has been called the sheath of bliss. After this, with the coming of thinking, one automatically moves into the second circle of Maya (illusion). This is the

Miracle of intellect. It was named the intellect sheath. Decending lower still, there awakened the idea of making some achievement of producing something new. Affections and allurements brought this being under their control and pushed him into countless programmes, which are ever-expanding, so that the chain is never broken. The state of mind has been called the mental sheath. One was caught in the circle of resolution and repudiation. Beyond this stage, the cosmic energy pushed it still further down and called it the Circle of Power or the vital sheath. This power was born out of the relationships of the illusion. After this, it assumed some form and went on assuming different forms. As Guru Maharaj has ordained -

For several births thou became a worm and a moth.
In several birth thou wert an elephant, a fish and a deer.
In several births thou became a bird and a snake.
In several births thou wert yoked as a horse and an ox.

ਕਈ ਜਨਮ ਭਏ ਕੀਟ ਪਤੰਗਾ।। ਕਈ ਜਨਮ ਗਜ ਮੀਨ ਕੁਰੰਗਾ।।
ਕਈ ਜਨਮ ਪੰਖੀ ਸਰਪ ਹੋਇਓ।। ਕਈ ਜਨਮ ਹੈਵਰ ਬ੍ਰਿਖ ਜੋਇਓ।। ਅੰਗ - 176

This circle of different bodies is called Annmayee Kosh the sheath of food.

In this way, this pure consciousness (drop) went on amassing round it the tendencies towards illusions. It forgot its real nature and completely lost thought of the fact as to who I am, and wherefrom I have come. Not recognizing oneself as the Pure (Divine) Light, one started looking on oneself as just the body, which is made of five elements and which is subject to all sorts of ills. The wise called this circle as the sheath of the Foods. It forsook its real state of supreme happiness and considering oneself as the being of dust, it from the time immorial, has been going through the circle of births and deaths and has been experiencing untold miseries. He has been weeping and crying and lamenting. He does not realize how he could be reunited with his original source (God), Who is all Truth, all Consciousness and all bliss; and return to his original stage. So caught in miseries, he keeps on lamenting.

The seers, the prophets, the saints and sages, philosophers, and those who have known the secrets of the Divine have told man many supernatural ways to the real True path. These prophets having come out of the source of all purity appeared in the most holy forms. They by their sayings gave to man the gospel of Vedas and Puranas, Bible and Holy Writ all of which assumed their loftiest form in the shape of Guru Granth Sahib.

The Fifth Emperor of the World Guru Arjan Dev has commanded thus, to free this being from the circle of the world of woe -

Sing the praise of the Lord, O friendly saints, with alertness and single-mindedness.

ਪ੍ਰਭ ਕੀ ਉਸਤਤਿ ਕਰਹੁ ਸੰਤ ਮੀਤ।। ਸਾਵਧਾਨ ਏਕਾਗਰ ਚੀਤ।। ਅੰਗ - 295

This is a very simple path, treading on which man, over coming countless obstacles one can merge into his realself, which is all Light. To achieve this goal, concentration of mind is extremely necessary. So long as one does not know how to achieve concentration of mind, that long all his prayers and other efforts remain fruitless. There are some tendencies of mind, which do not allow one to achieve concentration of mind. Of these,

the first tendency is named Mentality of Evidence.

1. Mentality of Evidence (ਪ੍ਰਮਾਣ ਬਿਰਤੀ) (regarding the outward world as the Supreme Reality) - Whatever is the spread that is visible, they may be children, wife, parents, one's own body the different relationships of the bodies, friends, enemies, things that bring joys or sorrows remaining engrossed in all these things is termed Mindset of evidence. To withdraw the mind from this world of sights and sounds seems extremely difficult. Till one gets the guidance of a perfect Guru, one cannot be liberated from this visible world. Guru Maharaj's sermon is-

All that is seen, shall go not with thee, O man. So abandon thou thy self-conceit and worldly attachment.

ਦ੍ਰਿਸਟਉ ਕਛੁ ਸੰਗਿ ਨ ਜਾਇ ਮਾਨੁ ਤਿਆਗਿ ਮੋਹਾ।। ਅੰਗ - 1230

This being knows that he is not to stay in this world for all time, nor are sons and daughters, wife, parents eternal in the world, yet when one of them dies, he is overwhelmed with unbearable grief at their separation and can't rise above this slush.

2. The Reverse Mindset (ਵਿਪਰਜੇ ਬਿਰਤੀ) - The second type of mentality is named the Reverse Mindset. In this stage, everything appear the opposite of what it is; things non-existent appear to have existed, and things existing seem non-existing. It is like the example of a travelling in summer through the desert, where man being tortured by thirst is desperately in need of water to quench his thirst. In the desert land, he has mirage that a river overflowing with cold water is flowing at some distance from him. This deception seems to give to him some feeling to be a true fact. But when he reaches that place, he finds nothing there. It was just a mirage. Similarly, everyday he sees the world with his eyes and hears it with his ears and regards this outward world as full truth.

Before our very eyes, this world is seen passing away.

ਨੈਨਹ ਦੇਖਤ ਇਹੁ ਜਗੁ ਜਾਈ।। ਅੰਗ - 325

Still he regards the world as a true reality. On the other hand Waheguru Ji, who is Omnipresent and is immanent everywhere -

Wherever I see, there I see Him present. He, My Master, is never far from any place.
O my soul, ever remember Him, who is contained in everything.

ਜਹ ਜਹ ਪੇਖਉ ਤਹ ਹਜੂਰ ਦੂਰਿ ਕਤਹੁ ਨ ਜਾਈ॥
ਰਵਿ ਰਹਿਆ ਸਰਬਤ੍ਰ ਮੈ ਮਨ ਸਦਾ ਧਿਆਈ॥
P. 677

In the earth, in the Sky
There pervades a light in all.
It can't be added to, nothing can be substracted from it.
It permits no change.

ਜਿਮੀ ਜਮਾਨ ਕੇ ਬਿਖੈ ਸਮੱਸਤ ਏਕ ਜੋਤ ਹੈ।।
ਨ ਘਾਟ ਹੈ ਨ ਬਾਢ ਹੈ ਨ ਘਾਟ ਬਾਢ ਹੋਤ ਹੈ।।
ਅਕਾਲ ਉਸਤਤਿ

According to this holy writ, inside and outside, all is full of God. With His Power, goes on the entire operation of the world; with the Power of His Name, the world appears, man regards this all pervading spirit as untrue. There is not a trace of doubt in such a person. He feels that the world around him is all truth and God, who is All-perfection, spread all-round in the Universe is untrue. This mentality is called the Opposite Mindset. Guru Maharaj makes a reference to it -

This world is the mountain of smoke.
What thought has made thee deem it real?

ਇਹੁ ਜਗੁ ਧੂਏ ਕਾ ਪਹਾਰ।। ਤੈ ਸਾਚਾ ਮਾਨਿਆ

ਕਿਹ ਬਿਚਾਰਿ॥ ਅੰਗ - 1187

3. The Sleeping Mentality (ਨਿੰਦ੍ਰਾ ਬਿਰਤੀ) - The third type of mentality is called sleeping Mindset. Man knows all and reads all, still he keeps lost under the power of sleep. This stage of forgetting the Reality is called the Sleeping Mentality.

4. Alternative Mentality (ਵਿਕਲਪ ਬਿਰਤੀ) - The fourth kind is named Alternative Mentality. Man does small good acts such as giving charity, the recitation of the Bani and holy singing, and with the aid of these small items, he has hope of great fruit. In other words, under the influence of this mentality, one feels the great effect of desires. Little service and expectation of great rewards, such is his condition. Such an alternative mentality does not allow the mind to achieve full concentration in the prayers to God.

5. Remembering Mentality (ਸਿੰਮ੍ਰਿਤੀ ਬਿਰਤੀ) - The fifth type is the Remembering Mentality. When a person begins prayer and obeisance to God, when he starts recitation of the gospel, and when he tries to unite his consciousness with God's Name, he has memories of long-forgotten things. This memory mindset does not allow him to offer prayers whole-heartedly; his reading of the holy texts won't bear fruit.

Try to understand this fact by means of a parable. When Guru Nanak, the Emperor of the World, while bathing in the Bein River plunged into water and came out after three days, he was repeating only one saying-

I am neither a Hindu, nor a Muslim.
My body and soul belong to Him, who is called God of Muslims and the Lord of Hindus.

ਨਾ ਹਮ ਹਿੰਦੂ ਨ ਮੁਸਲਮਾਨ॥ ਅਲਹ ਰਾਮ ਕੇ ਪਿੰਡੁ ਪਰਾਨ॥ ਅੰਗ - 1136

Islam was all in all, all over Bharat. It was Muslim rule. When the above episode reached the Nawab, he summoned Guru Maharaj. Reaching the court, Guru Maharaj expounded the Truth, removing all doubts. At that time, the Nawab came to know assuredly that Guru Nanak is some perfect seer (prophet) and he is common to all. He sees no difference between man and man. The day was Friday and Nawab said, you come along with us to the mosque, to offer Namaz (prayer). So Guru Ji went to the mosque. The Nawab underwent ablutions; the Qazi (leader) also did ablutions (mini bath) and started offering Namaz. Thousands of citizens of the town Sultanpur Lodhi were also saying Namaz. Guru Nanak Padshah stood aloof. After the Namaz, the Nawab in anger spoke thus to the Guru.

Why did you not join us in the Namaz, after reaching the mosque? Hearing the question, Guru Ji smiled a bit and said -

While you were in the mosque your mind was wandering elsewhere
When you were bowing in prayer, your imagination flew to Kandhar.
Your agile mind was busy purchasing young and swift horses.
Your false-self was in the mosque, bowing and praying.

ਠਾਂਢੇ ਆਪ ਮਸੀਤ, ਨ ਮਨ ਠਹਿਰਾਇਆ॥
ਹੋ ਸਿਜਦੇ ਸਮੇਂ ਸੰਕਲਪ ਕੰਧਾਰ ਪਠਾਇਆ॥
ਕਰਤਿ ਖਰੀਦ ਤੁਰੰਗ ਤਰਲ, (ਚੰਚਲ) ਮਨ ਤਰਲਿਆ॥
ਕੂਰੇ ਬੀਚ ਮਸੀਤ ਨਿਵੈਂ ਕਬ ਸਰਲਿਆ॥
ਸ੍ਰੀ. ਗੁ. ਪ੍ਰ. ਸੂਰਜ ਗ੍ਰੰਥ, ਅੰਗ - 397

You made all false obeisance in the mosque-

You did not imbibe in your heart the true prayer. You simply wore the garb of meditation while your mind wandered in ten directions.

ਜਿਹ ਕਰਨੀ ਸੋ ਮੂਲ ਨ ਥਿਰ ਉਰ (ਹਿਰਦਾ) ਮਹਿੰ ਕਰਾ।
ਹੋ ਬੇਸ ਬੰਦਗੀ ਧਰਜੋ ਦਸੌਂ ਦਿਸ਼ਿ ਮਨ ਫਿਰਾ।
ਸ੍ਰੀ. ਗੁ. ਪ੍ਰ. ਸੂਰਜ ਗ੍ਰੰਥ, ਅੰਗ - 397

O Nawab Sahib, your mind was busy buying horses in Kandhar and in body you were present in the mosque, offering Namaz. Just then, the Qazi (religious leader) said, Nanak, don't you feel fear mounting this accusation on the Nawab. Also if you did not join the Nawab in saying Namaz, you could have offered Namaz with me. Guru Nanak Padshah once again remarked-

Dear Qazi! you were physically present in the mosque, offering prayers but your mind was away at home. Your mare has delivered a colt, and you were worrying that it may not fall in a pit nearby. You had concentration not even for a moment.

ਬੋਲੇ ਨਾਨਕ ਬੈਨ ਐਨ ਸੁਖ ਗੁਨ ਦਯਾ।
ਕਾਜ਼ੀ ਕਰੀ ਨਿਵਾਜ ਸਦਨ (ਘਰ) ਮੈਂ ਮਨ ਗਯਾ।
ਬੜਵਾ (ਘੋੜੀ) ਜਯੋ ਵਛੇਰ, ਗਰਤ (ਟੋਇਆ) ਤਹਿ ਪਾਸ ਹੈ।
ਹੋ ਤਹਿ ਮੈ ਨਹਿੰ ਗਿਰ ਪਰੈ, ਬਹੁਤ ਬਿਸਵਾਸ (ਸੰਸਾ) ਹੈਂ।
ਤਿਹ ਕੇ ਸੰਗ ਮਨ ਫਿਰਤਿ, ਨ ਥਿਰ ਇਕ ਛਿਨ ਭਯਾ। ਸ੍ਰੀ. ਗੁ. ਪ੍ਰ. ਸੂਰਜ ਗ੍ਰੰਥ, ਅੰਗ - 398

Thus Qazi too was put to much shame. At that time, the Nawab, paying tribute to Truth, bent his head at the feet of Guru Nanak and submitted, O Nanak, you are the prophet of all the prophets. Do remove the pain in my heart. Do remove the pain in my heart because I failed to recognize that you are a great and exalted personality.

You being embodiment of God, possess intuitive knowledge of other people's thoughts.

ਤੁਮ ਖੁਦਾਇ ਕੋ ਰੂਪ ਹੋ, ਅੰਤਰਜਾਮੀ ਸਰਬ।
ਮੈਂ ਅਤਿ ਮੂਢ ਨ ਲਖਿ ਸਕਜੋ ਨਿਜ ਐਸ੍ਵਰਜਹਿੰ ਗਰਬ।।
ਸ੍ਰੀ ਗੁ. ਪ੍ਰ. ਸੂਰਜ. ਗ੍ਰੰਥ, ਅੰਗ - 388

He petitioned to Nanak, Tell me how this unstable mind can be brought under control. On that occasion, Guru Maharaj ordained -

Dear Khan, listen with attention.
The mind is very powerful and restless.
It is very difficult to control it but once controlled, it becomes priceless.

ਸੁਨੋ ਖਾਨ! ਦੈ ਕਾਨ, ਪ੍ਰਬਲ ਮਨ ਲੋਲ (ਚੰਚਲ) ਹੈ।
ਯਾਂ ਕੋ ਰੋਕਨ ਕਠਨ, ਰੁਕੈ ਤ ਅਮੋਲ ਹੈ।ਸ੍ਰੀ ਗੁ. ਪ੍ਰ. ਸੂਰਜ ਗ੍ਰੰਥ, ਅੰਗ - 398

The Guru said, Nawab Sahib, mercury can by no means be kept steady under the finger but when it is mixed with medicines and burnt, then it becomes quite steady. Similarly an uncontrollable horse gives a lot of trouble to its rider, but an intelligent rider controls it, by pulling the bite in its mouth and makes it act according to his will. In this way, you have to train your mind too. There is the commandment -

The mortal's business is with his mind. He who chastens his mind attains perfection.
Says Kabir, I have dealings with my mind alone. I have met with nothing like the mind.
This mind is power. This mind is God.
This mind is the life of the five elements of the body.
Restraining his mind when man remains in the state of beatitude, then, can he tell the secrets of the three worlds.

ਮਮਾ ਮਨ ਸਿਉ ਕਾਜੁ ਹੈ ਮਨ ਸਾਧੇ ਸਿਧਿ ਹੋਇ।।
ਮਨ ਹੀ ਮਨ ਸਿਉ ਕਹੈ ਕਬੀਰਾ ਮਨ ਸਾ ਮਿਲਿਆ ਨ ਕੋਇ।।
ਇਹੁ ਮਨੁ ਸਕਤੀ ਇਹੁ ਮਨੁ ਸੀਉ।। ਇਹੁ ਮਨੁ ਪੰਚ ਤਤ ਕੋ ਜੀਉ।।
ਇਹੁ ਮਨੁ ਲੇ ਜਉ ਉਨਮਨਿ ਰਹੈ।। ਤਉ ਤੀਨਿ ਲੋਕ ਕੀ ਬਾਤੈ ਕਹੈ।। ਅੰਗ - 342

(... to be continued)

ਆਤਮ ਮਾਰਗ ਦੀ ਨਵੀਂ ਮੈਂਬਰਸ਼ਿੱਪ ਅਤੇ ਰਿਨੀਊਵਲ ਅਤੇ ਪੁੱਛਗਿਛ

ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸੰਤ ਬਾਬਾ ਵਰਿਆਮ ਸਿੰਘ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਰਤਵਾੜਾ ਸਾਹਿਬ ਵਾਲਿਆਂ ਦੁਆਰਾ ਲਿਖਤ ਪੁਸਤਕਾਂ, ਗਾਇਨ ਕੀਤੀਆਂ ਸ਼ਬਦ ਗੁਰਬਾਣੀ ਕੀਰਤਨ ਦੀਆਂ ਕੈਸਟਾਂ, CD.'S, VCD.'S, DVD.'S MP3 ਦੇ ਆਪ ਜੀ ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਐਡਰੈਸਾਂ ਤੋਂ ਮੰਗਵਾ ਸਕਦੇ ਹੋ ਜੀ।

For all enquiries about 'Atam Marg' viz. renewal, new membership, non-receipt of the magazine etc. and also for procuring audios, videos & CDs; and books authored by Sant Waryam Singh Ji, please contact the following

England (U.K.)

For U.K. renewal of Atam Marg Magazine please forward cheque £ 40.00 payable to A.M.S.S.E.C.T. (U.K.) 9 Elizabeth Road, Walsall, West Midlands WS5 3 PF

Atam Marg Spiritual Scientific Educational Charitable Trust (U.K.)

9 Elizabeth Rd.,

Walsall West Midlands, WS5 - 3PF U. K.

Contact	:	Mrs. Gurbax Kaur,
Mr. Jagtar Kulair	:	Tel : 0044-1212002818
		Fax : 0044-1212002879
Voicemail	:	0044-8701654402
Raj Mobile	:	0044-7968734058
Email	:	info@atammarguk.com

U.S.A.

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust,

Contact : Baba Satnam Singh Ji Atwal, 2755, Guildhall Dr., San Jose, Ca - 95132, U.S.A

Phone :- 001-408-263-1844, vgrmctusa@yahoo.com

S. Baldev Singh Grewal

Fremont, U.S.A - 001-510-249-9456

Canada

Bhai Sarmukh Singh Pannu

Phone - 001-604-433-0408

Bhai Parmjit Singh Sandhu

Cell: 001-250-600-3072

Bhai Tarsem Singh Bains

Cell : 001-604-862-9525, Phone : 001-604-599-5000

IN INDIA

09417214391, 09417214379 09814612900, 9417214378

Email: **atammarg1@yahoo.co.in**

Foreign Membership

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 £
EUROPE	50 Euro	500 Euro
AUS.	80 AUD$	800 AUD$
CANADA	80 CAN$	800 CAN$

Australia

Bibi Jaspreet Kaur

Cell : 0061-406619858

Email :- jaspreetkaur20@hotmail.com